डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव

श्रीवत्स

भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक

गङ्गानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
इलाहाबाद

Rashtriya Sanskrit Sansthan

(Under the auspices of the Ministry of Education and Culture, Govt. of India)

Delhi

Ganganatha Jha Kendriya Sanskrit Vidyapitha STUDIES

General Editor
Dr. G. C. Tripathi

—•—

No. 2

ŚRĪVATSA

An Auspicious Motif of Indian Art

by

Dr. A. L. Srivastava

ALLAHABAD

1983

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्
(केन्द्रीयशिक्षामन्त्रालयस्याङ्गभूतम्)
देहली

—०—

गंगानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठप्रबन्धमाला
प्रधानसम्पादकः
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी

—०—

द्वितीयं प्रसूनम्

श्रीवत्स

भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक

—०—

प्रणेता

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव

—०—

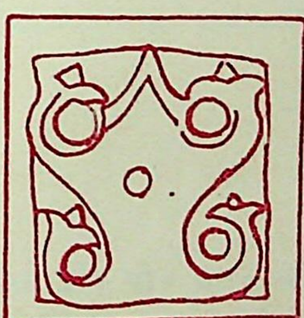
गङ्गानाथझाकेन्द्रीयसंस्कृतविद्यापीठम्
मोतीलाल नेहरू पार्क
प्रयागः

श्रीवत्स

भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक

लेखक

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव



गंगानाथझा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

चन्द्रशेखर आज़ाद पार्क

इलाहाबाद–२

१९८३

प्रकाशक :
डॉ० गयाचरण त्रिपाठी
प्राचार्य
गङ्गानाथझा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ
इलाहाबाद-२

मूल्य :

मुद्रकः
अरविन्द प्रिण्टर्स
२०-डी, बेली रोड
इलाहाबाद

वन्दउँ गुरुपद कंज

गुरुवर डॉ० बी० एन० श्रीवास्तव
(प्राचार्य एवं अध्यक्ष, प्राचीन भारतीय
इतिहास तथा पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ
विश्वविद्यालय) को सादर—साभिवादन

FOREWORD

In every age and every culture the human beings have gtven expression to their religious and spiritual experience by means of symbols. Since these symbols are outcome of religious thoughts matured in course of centuries, they often hold in themselves key to an understanding of the currents of religious thoughts which have gone into making of these objects of art. Such symbols usually get so firmly associated with a culture that they persist for many thousand years and fail to disappear even when the religious meaning that they were originally conceived to convey, is no more relevant to a society. In such a case the society superimposes a new meaning upon them and accepts them with a fresh significance. This is also the case when these symbols migrate from one cultural milieu to the other. The most notable examples of religious symbols with multi-cultural affiliations are pernaps those of *Svastika* and *Srivatsa* which are conspicuous by their ubiquitous appearance as auspicious marks in India and elsewhere.

The symbol of Srivatsa ("the child of Mother Goddess") has a long history. Dr. A. L. Srivastava has ably shown that the symbol is fairly wide-spread in ancient world and that its origin can be traced back to a simplified representation of a human being which was artistically embellished in the course of development and later stylised. The use of the symbol of Srivatsa may have been associated with the worship of Mother Goddess who is found to have been beautifully depicted with an inscription reading *Siri Ma* (Sri Mata) in the art of Bharhut (2nd B.C.) and elsewhere.

This is the first book on this interesting theme written in any language which takes into account not only the vast iconographical material on this subject available in the plastic art of India and outside world but which also takes recourse to the relevant literary sources and tries to check and corroborate the results drawn from the study of art from the Shastra. As such, it far transcends the

scope and findings of the English work of Shri P. K. Agrawala on the subject (*Srivatsa : the Babe of the Goddess Sri*; Varanasi, 1974) and marks a welcome advancement of our knowledge on this beautiful yet subtle symbol which is present in our religious tradition right since ancient times. It is a symbol which has been adopted as an auspicious mark by the Buddhists, by the Jainas and by the Hindus with an equal degree of fondness. No Hindu ever conceives of the chest of Lord Vishnu without a *Srivatsa* adorning it. It is perhaps due to the presence of this symbol that the belief has gained ground that the goddess Sri or Lakshmi permanently resides in the chest of the Lord and never deserts Him.

There are unfortunately not yet many works in Hindi which deal with the various themes and problems pertaining to Indian art in a scholarly and scientific manner. This study of Dr. A. L. Srivastava is an encouraging addition to such category of works and I congratulate the learned author for enriching Hindi literature with this scholarly work evincing of his deep knowledge of the subject, his keen analytical capacity and his mature judgement. I am also sincerely grateful to Prof. K.D. Bajpai, former Professor and Head of the Deptt. of Ancient Indian History and Archaeology at the Saugor University, Sagar who has enhanced the value of this book by writing a few words by way of Introduction. I take it as a benediction from him and seek his blessings to be able to produce many such works on Indian art in future.

I hope that the students and scholars of Indian religion and art shall welcome the publication of this work which takes one deep into the realm of religious symbolism and unfurls its mysteries.

Ganganatha Jha Kendriya
Sanskrit Vidyapeetha,
ALLAHABAD
January 26th, 1983

G.C. TRIPATHI
Principal

प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय संस्कृति में प्रतीकों का विशेष महत्त्व था। धर्म, दर्शन, साहित्य, विविध कलाओं तथा लोकवार्ता में प्रतीकों के अनेक रूप देखने को मिलते हैं। कतिपय प्रतीक या चिह्न क्षेत्र, पर्वत, नदी, सरोवर, वन, लता-पुष्पादि के द्योतक थे। कुछ देवताओं के विभिन्न वर्गों का तथा अन्य उन देवों से सम्बन्धित कार्यों का प्रतिनिधित्व करते थे। अनेक प्रतीक लोकजीवन के विविध रूपों के परिचायक थे। पशु-पक्षियों एवं जन्तुओं के भी अनेक चिह्न या लांछन निर्धारित हुए थे।

इस प्रकार प्रतीकों का स्वरूप न केवल धार्मिक रहा, अपितु अनेक लौकिक क्रिया-कलाप भी उनके द्वारा अभिव्यक्त किए गए एवं भारतीय धर्म, साहित्य और कला के इतिहास में उनका स्थान व्यापक हो गया।

भारत में विकसित होने वाले धर्मों ने अपनी आवश्यकता के अनुरूप विविध प्रतीकों का चुनाव कर उन्हें अपने-अपने धर्म का अंग बना लिया। देश के अनेक प्रमुख धर्मों में कुछ विशिष्ट प्रतीकों का समान महत्त्व देखने को मिलता है। अन्य कई तत्त्वों की तरह प्रतीक भी भारतीय ऐक्य के साधन बने।

अन्य कई प्रतीकों की तरह श्रीवत्स-संज्ञक प्रतीक को भारतीय साहित्य तथा कला में उल्लेखनीय स्थान मिला है। इस प्रतीक के उद्भव तथा इसके क्रमिक विकास का विवेचन अनेक रोचक तथ्यों को प्रकाश में लाता है। भारतीय मंदिर, देव-प्रतिमाओं तथा कतिपय अन्य प्रतीकों की तरह श्रीवत्स की उद्भावना में भी मानव शरीर मुख्य स्रोत प्रतीत होता है। श्रीवत्स के क्रमिक विकास के निरूपण में इस बात को भी देखा जा सकता है कि मण्डूक, मत्स्य, सर्प जैसे जन्तुओं के स्वरूपों से भी उसका साम्य है। मंगलघट, यज्ञवेदी, वज्र आदि अन्य धार्मिक चिह्नों में भी उसका तादात्म्य देखा जा सकता है। श्रीवत्स अपनी विविधताओं तथा आलंकारिक प्रयोगों में उपयोगिता के कारण विविध धर्मों में ग्राह्य हुआ। उसके धार्मिक तथा लौकिक दोनों ही पक्ष भारतीय ललित कलाओं में एक मुख्य उपादान के रूप में मान्य हुए और एक विशेष मांगलिक चिह्न के रूप में वह प्रख्यात हो गया।

प्रस्तुत पुस्तक में पहली बार श्रीवत्स पर विस्तार से विवेचन किया गया है। विद्वान् लेखक ने आद्यैतिहासिक काल से लेकर परवर्ती युगों तक इस विशिष्ट प्रतीक के उद्भव तथा विकास का निरूपण किया है। पुस्तक में सम्बन्धित पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक सामग्री को विधिवत् ग्रहणकर उसकी युक्तिसंगत व्याख्या की गयी है। इसमें कला के विभिन्न माध्यमों में प्राप्त श्रीवत्स के प्रायः सभी रूपों को रेखाचित्रों द्वारा व्यक्त किया गया है। धर्म तथा कला के इतिहास के अध्येताओं के लिए यह पुस्तक निस्सन्देह उपयोगी सिद्ध होगी।

प्रयाग
मकर संक्रान्ति,
१४ जनवरी, १९८३

प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी
एफ० एन० आई०
टैगोर प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
भारतीय पुराभिलेख परिषद् तथा
भारतीय पुरातत्त्व परिषद्

आमुख

भारतीय कला हमारे जीवन का प्रतिविम्व है। यहाँ के धर्म, दर्शन और संस्कृति कला में स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हुए हैं। इस गुरुतर कार्य के लिए भारतीय कलाकारों ने कतिपय प्रतीकों का सहारा लिया है। ये प्रतीक ही कला की वर्णमाला कहे जा सकते हैं। विभिन्न विचारों, परम्पराओं, मान्यताओं एवं विश्वासों को इन प्रतीकों ने साकार कर दिया है। ये कला-प्रतीक न केवल विचारों को अभिव्यक्त करते हैं वरन् शोभा, आरक्षा एवं मांगलिक भावनाओं की संपूर्ति भी करते हैं। जहाँ ये कला-प्रतीक किसी विशिष्ट विचार या भाव की सृष्टि के निमित्त नहीं भी होते हैं, वहाँ भी ये अपने स्वरूप का मांगलिक प्रभाव डालते हैं और दर्शक के शारीरिक एवं मानसिक सौन्दर्य-वोध का परिष्कार करते हैं।

आज से लगभग दस-ग्यारह वर्ष पूर्व जव मैं साँची-शिल्प पर शोधकार्य कर रहा था तव मेरा परिचय भारतीय कला-प्रतीकों से हुआ। स्वयं साँची-शिल्प में ही स्तूप, चक्र, त्रिरत्न, नन्दिपद, वोधिवृक्ष, कल्पलता, छत्र, आसन

पद-चिह्न, मीन-मिथुन आदि अनेक प्रतीक उत्कीर्ण किए गए हैं। धीरे-धीरे जब मुझे कला में इन प्रतीकों के महत्त्व का पता चला तब मैंने अपने शोध-प्रबन्ध में प्रतीकों के अध्ययन के लिए एक स्वतन्त्र अध्याय निर्धारित किया। प्रतीकों के इस अध्ययन में मेरा ध्यान श्रीवत्स प्रतीक की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ, विशेषरूप से इसलिए क्योंकि तब तक श्रीवत्स पर कोई काम किया ही नहीं गया था। विद्वानों ने इसे या तो 'शील्ड सिम्बल' कहा अथवा 'नागमुद्रा'। कभी तो उन्होंने इसे 'एक चिह्न' कहकर ही बात समाप्त कर दी। यदि कभी श्रीवत्स का अलंकृत रूप हुआ तो उन्होंने इसे मंगल कलश मान लिया। श्रीवत्स का विश्रुत स्वरूप वक्ष-लक्षण के रूप में साहित्य में सर्वत्र उपलब्ध था, किन्तु इसके मांगलिक स्वरूप की ओर ध्यान कम ही गया था। जिन विद्वानों ने इसे श्रीवत्स का मांगलिक रूप समझा भी उन्होंने भी इसका वैसा विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया जैसा स्वस्तिक, चक्र और मंगल-कलश आदि प्रतीकों का प्रस्तुत किया जा चुका था।

साँची-शिल्प में उत्कीर्ण श्रीवत्स के सभी अंकनों के बाद मैंने सम्पूर्ण भारतीय कला में इसके विभिन्न रूपांकनों को एक-एक करके एकत्र करना प्रारम्भ किया। इस प्रयास में मुझे उत्कीर्ण कला, मृण्मूर्तिकला, मुद्राकला, दन्तकला, धातुकला, वास्तुकला, चित्रकला, अभिलेख, आदि कला के विभिन्न आयामों में श्रीवत्स के सार्वजनीन लोकप्रिय स्वरूप के मांगलिक दर्शन हुए।

स्वस्तिक और श्रीवत्स भारतीय जीवन के सर्वाधिक मांगलिक प्रतीक थे—स्वस्तिक सार्वभौमिकता का एवं श्रीवत्स सुख-सम्पन्नता का। 'स्वस्ति-श्री' इन्हीं का संक्षिप्त रूपान्तर था जो साहित्य में स्वस्तिवाचन में प्रयुक्त होता रहा। भारतीय कला में भी स्वस्तिक और श्रीवत्स के साथ-साथ रूपायित किये जाने के कई उदाहरण अब तक प्रकाश में आ चुके हैं। मनुष्य के जन्म से ही श्रीवत्स भी स्वस्तिक के समान भारतीय जीवन से जुड़ गया था।

श्रीवत्स लक्ष्मी का प्रतीक था ('श्री-वत्स' अर्थात् श्री का पुत्र)। अतएव लक्ष्मी के ही समान श्रीवत्स भी सुख-समृद्धि का पर्याय माना गया था। भारतीय कला में ऐसे अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं जहाँ लक्ष्मी के

साथ-साथ उनका प्रतीक श्रीवत्स भी अभ्यंकित है। तिलकधारी कॉलेज, जौनपुर (उ० प्र०) में प्राचीन भारतीय इतिहास विभाग के प्रवक्ता मेरे मित्र डॉ० ओ३म् प्रकाश सिंह ने मुझे श्रीवत्स के एक ऐसे मूर्ति-शिल्प का फोटो-चित्र दिखलाया है जिसमें लक्ष्मी के समान ही दो गज श्रीवत्स का अभिषेक करते दिखलाए गए हैं।

श्रीवत्स प्रतीक का उद्भव मानव-मूर्ति के आधार पर हुआ था, क्योंकि अपने गुणों के आधार पर संसार के प्राणियों में मानव ही लक्ष्मी-पुत्र होने के लिए समर्थ था। समय और सुविधा के साथ-साथ श्रीवत्स का प्रतीक धीरे-धीरे अपना रूप बदलता रहा। जहाँ पहले वह एक खड़े मानव की मूर्ति के समान था, वहीं बाद में वह पालथी मारकर बैठे मानव के आकार का हो गया। आगे चलकर वह फन से फन मिलाए दो नागों का मिथुन बन गया और अन्ततः श्रीवत्स एक चतुर्दल पुष्प के रूप में बदल गया।

श्रीवत्स प्रतीक का उद्भव एक मांगलिक चिह्न के रूप में हुआ था। अत्यन्त प्राचीन काल से लेकर कुषाणकाल तक श्रीवत्स प्रतीक की मांगलिक परम्परा अबाध गति से प्रवहमान रही। कुषाणकाल में श्रीवत्स का उपयोग एक महापुरुष-लक्षण के रूप में भी किया जाने लगा। तबसे इसका विकास वक्ष-लक्षण के रूप में अधिक लोकप्रिय हो गया, और मांगलिक चिह्न के रूप में इसकी महत्ता प्रायः विलुप्त सी हो गई। वक्ष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स का उपयोग जैन, बौद्ध एवं ब्राह्मण मूर्तियों पर सम्पूर्ण मध्यकाल में पाया जाता रहा।

श्रीवत्स प्रतीक की परम्परा बड़ी पुरानी है। शुंगकाल की जैन-बौद्ध कला से तो इसका अंकन निरन्तर पाया ही जाता रहा है, इसके पहले भी मौर्ययुगीन श्री-चक्रों में, सैन्धव सभ्यता की मोहरों पर तथा गंगाघाटी के ताम्र-उपकरणों के रूप में श्रीवत्स का रूपांकन किया गया था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कम से कम १५०० वर्ष ई० पू० से श्रीवत्स की अविच्छिन्न परम्परा भारतीय कला में उपलब्ध है।

श्रीवत्स-सम्बन्धी अपना एक शोध-निबन्ध **'श्रीवत्स सिम्बल इन इण्डियन आर्ट'** मैंने रोम (इटली) से प्रकाशित होने वाले जर्नल **ईस्ट ऐण्ड वेस्ट** में अगस्त १९७४ में भेजा था जो उस जर्नल के २९ वें अंक में प्रकाशित

हुआ है। उसी के बाद डॉ० पृथिवी कुमार अग्रवाल की पुस्तक **श्रीवत्स : दि बेब ऑव गॉडेस श्री** (नवम्बर १९७४) प्रकाश में आई। डॉ० अग्रवाल ने भी भारतीय कला के प्रायः सभी अंगों से श्रीवत्स के रूपांकन ढूँढ़ निकाले हैं। मात्र एकाध त्रुटियों के, जैसे पृष्ठ १० पर साँची के स्तूप २ के स्थान पर स्तूप ३ छपा है, उनका प्रयास स्तुत्य है। कम से कम श्रीवत्स प्रतीक पर प्रकाशित होने वाला उनका ग्रन्थ पहला तो है ही।

१९७४ से लेकर अव तक मुझे निरन्तर श्रीवत्स-सम्वन्धी सामग्री उपलब्ध होती रही है। डॉ० अग्रवाल के ग्रन्थ से भी मुझे श्रीवत्स के कई उदाहरण मिले। परन्तु कतिपय उदाहरणों के अलावा मैंने उनके अध्ययन का अन्य कोई पहलू नहीं अपनाया है। मेरे निवन्ध की प्रस्तुति नितांत भिन्न है। साहित्यिक आधार दिखाकर मैंने भारतीय कला के विभिन्न माध्यमों में पाए गए श्रीवत्स के सभी रूप दर्शाए हैं, पहले मांगलिक चिह्न के रूप में और फिर महापुरुष-लक्षण के रूप में। महापुरुष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स की विवेचना भी मैंने जैन, वौद्ध तथा ब्राह्मण मूर्तियों के सम्वन्ध में अलग-अलग की है। तदनन्तर, मैंने इस प्रतीक के उद्भव, इसकी प्राचीनता तथा इसके स्वरूप-विकास पर अलग से विचार प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार श्रीवत्स सम्वन्धी मेरा अध्ययन डॉ० अग्रवाल के अध्ययन से नितांत भिन्न है।

केवल सामग्री की अधिकता एवं अध्ययन-शैली की भिन्नता के कारण ही इस निवन्ध के प्रकाशन में मेरी रुचि नहीं थी। इसका एक और भी कारण था, और वह था हिन्दी में इस विषय का प्रकाशन। मेरी अभिलाषा है कि भारतीय कला सम्वन्धी उत्तम ग्रन्थों का प्रकाशन राष्ट्रभाषा हिन्दी में हो।

इस निवन्ध के प्रवन्ध में मुझे जिन कृतियों से सामग्री प्राप्त हुई है उनके लेखकों एवं प्रकाशकों के प्रति मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैं भारतीय प्राच्य विद्या के सुविख्यात विद्वान् प्रोफेसर कृष्णदत्त वाजपेयी जी का कृतज्ञ हूँ जिन्होंने प्रस्तुत कृति के लिये प्रस्तावना के रूप में हमें अपना आशीर्वचन प्रदान किया है। गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, इलाहावाद के प्राचार्य डॉ० गया चरण त्रिपाठी का भी मैं

हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने विद्यापीठ के द्वारा प्रकाशित करवाकर एवं इसका प्राकक्थन लिखकर इस लघु कृति को ही नहीं वरन् इसके कृतिकार को भी गौरवान्वित किया है। अपनी गृहलक्ष्मी सरोजबाला के प्रति मैं अपना स्नेह-आभार किन शब्दों में प्रकट करूँ जिनके दैनंदिन व्यवहार से मुझे श्रीलक्ष्मी के स्वरूप का यत्किंचित आभास मिला है और तभी लक्ष्मी के प्रतीक **श्रीवत्स** का यह प्रणयन संभव हो सका है। अन्त में, अरविन्द प्रिण्टर्स के संचालक श्री गोविन्द शरण दास भी साधुवाद के पात्र हैं जिनकी व्यक्तिगत अभिरुचि के विना इस पुस्तक का इतना सुन्दर मुद्रण न हो पाता।

दीपोत्सव, १९८२ — ए० एल० श्रीवास्तव

संक्षिप्तियाँ

ओ०सी०पी	=ओकर कलर पाटरी (गेरुए रंग के मृद्‌भाण्ड)
पी०जी०डब्ल्यू	=पेण्टेड ग्रे वेयर (धूसर चित्रित मृद्‌भाण्ड)
जे०एन०एस०आई०	=जर्नल ऑव न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया
जे०यू०पी०एच०एस०	=जर्नल ऑव यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी
ए०एस०आई०	=आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया
ए०एस०आई०ए०आर०	=आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअलरिपोर्ट

चित्र-सूची

१४. साँची, स्तूप सं० २, वेदिका-स्तंभ, निचला अर्द्धचक्र-फलक, द्वितीय शती ई० पू० ।

१५. साँची, विशाल स्तूप, उत्तरी तोरण, प्रथम शती ई० पू० ।

१६. साँची, विशाल स्तूप, उत्तरी एवं पूर्वी तोरण, प्रथम शती ई०पू० ।

१७. साँची, विशाल स्तूप, उत्तरी तोरण-स्तंभ, प्रथम शती ई० पू० ।

१८. साँची, स्तूप सं० २, वेदिका-स्तंभ, द्वितीय शती ई० पू० ।

१९-२०. सारनाथ, वेदिका-स्तंभ, प्रथम शती ई० पू० ।

२१. मथुरा, वेदिका-स्तंभ, चक्र-फलक, कुषाण काल ।

२२. मथुरा (चौरासी), द्वार-खण्ड, प्रथम-द्वितीय शती ई० ।

२३. मथुरा (गायत्री टीला) प्रस्तर-फलक, प्रथम-द्वितीय शती ई० ।

२४. साँची, विशाल स्तूप, उत्तरी तोरण, स्तंभ, प्रथम शती ई० पू० ।

२५. भरहुत, वेदिका-स्तंभ, यक्षी चन्दा का कण्ठा, द्वितीय शती ई० पू० ।

२६. वैशाली, रजत हार, द्वितीय-तृतीय शती ई० ।

२७-२८. अहिच्छत्रा, मृण्मूर्तियाँ, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

२९. शाहाबाद (हरदोई), मृण्मुद्रा, प्रथम शती ई० पू० ।

३०. राजघाट (वाराणसी), मृण्मुद्रा, इलाहाबाद-संग्रहालय, सं० ४३ ।

३१. बसाढ़, मृण्मुद्रा, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, सं० ए ११३११-एन० एस० ६१७७ ।

३२. झूसी (इलाहाबाद), मृण्मुद्रा, इलाहाबाद-संग्रहालय, सं० ६०/३ ए ।

३३. भीटा (इलाहाबाद), मृण्मुद्रा, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, सं० ११२३३-एन० एस० १४७१ ।

३४ मृण्मुद्रा, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० एस/६०६ ।

३५. संकिशा (उत्तर प्रदेश), मृण्मुद्रा ।

३६. पिरक (पाकिस्तान), मृण्मुद्रा ।

३७. भट्टिप्रोलु (दक्षिण भारत), स्वर्ण पदक, द्वितीय शती ई० पू० ।

३८. अहिच्छत्रा, मृद्भाण्ड, तृतीय-चतुर्थ शती ई० ।

३९. मथुरा, जैन आयागपट्ट, मथुरा-संग्रहालय, सं० ४७.४९, प्रथम शती ई० ।

४० मथुरा, जैन आयागपट्ट, मथुरा-संग्रहालय, प्रथम शती ई० ।

४१. मथुरा, जैन आयागपट्ट, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/२५०, प्रथम शती ई० ।

४२. मथुरा, बौद्ध छत्र, सारनाथ-संग्रहालय, प्रथम शती ई० ।

४३. मथुरा, बौद्ध छत्र, मथुरा-संग्रहालय, प्रथम शती ई० ।

४४. मैनहाई (कौशाम्वी), स्तंभ-शीर्ष, विभागीय संग्रहालय, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहावाद विश्वविद्यालय, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

४५. ब्रह्मगिरि (कर्नाटक), कांस्य-फलक, कोल्हापुर-संग्रहालय, द्वितीय-तृतीय शती ई० ।

४६ रजत पंचमार्क सिक्के की अनुकृति, लगभग पाँचवीं–तृतीय शती ई० पू० ।

४७. चंद्रकेतुगढ़ (पश्चिमी बंगाल), रजत पंचमार्क सिक्का, आशुतोष-संग्रहालय, कलकत्ता, लगभग पाँचवीं-तृतीय शती ई० पू० ।

४८. पौनी (महाराष्ट्र), ताम्र पंचमार्क सिक्का, मौर्य-शुंग युग ।

४९. तक्षशिला से प्राप्त सिक्का, द्वितीय शती ई० पू० ।

५०. अयोध्या, ताम्र-सिक्का, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

५१-५२. अहिच्छत्रा, पंचाल-सिक्का, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

५३-५४. औदुम्बर-सिक्के, लिंजेन-संग्रहालय, नीदरलैण्ड्स, प्रथम शती ई० पू० ।

५५. कुणिन्द-सिक्का, प्रथम शती ई० पू० ।

५६-५९. चन्द्रवल्ली (कर्नाटक), सातवाहन-सिक्के, प्रथम शती ई० पू० ।

६०. नेवासा (महाराष्ट्र), सातवाहन-सिक्का, प्रथम शती ई० पू० ।

६१-६२. सातवाहन-सिक्के, प्रथम शती ई० ।

६३-६५. मथुरा के सिक्के, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

६६-६८. कसरवाड-संग्रह, उज्जैन के सिक्के, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

६९ कुलूत-सिक्का, प्रथम-द्वितीय शती ई० ।

७०. यौधेय-सिक्का, प्रथम-तृतीय शती ई० ।

७१. अरकान (वरमा), चन्द्रवंशी राजा का सिक्का, पाँचवी-ग्यारहवीं शती ई० ।

७२. सोंख (मथुरा), पंचाङ्गुल, मृत्फलक, प्रथम शती ई० पू० ।

७३. मथुरा-शिल्प, मथुरा-संग्रहालय, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

७४. भरहुत-शिल्प, भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, द्वितीय शती ई० पू० ।

७५. नासिक, गुहा-चैत्य, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

७६. अमरावती-शिल्प, प्रथम शती ई० ।

७७. उदयगिरि (उड़ीसा), रानीगुम्फा, प्रथम शती ई० पू० ।

७८. उदयगिरि (उड़ीसा), गणेशगुम्फा, प्रथम शती ई० पू० ।

७९. खण्डगिरि (उड़ीसा), अनन्तगुम्फा, प्रथम शती ई० पू० ।

८०. मथुरा, जैन आयागपट्ट, मथुरा-संग्रहालय, प्रथम शती ई० ।

८१. गिरिनार (जूनागढ़), बावाप्यारा मठ का एक गुफा-द्वार, द्वितीय-तृतीय शती ई० ।

८२ बेग्राम (अफग़ानिस्तान), दन्तकलाकृति, प्रथम-द्वितीय शती ई० ।

८३. बेग्राम (अफगानिस्तान), दन्तकलाकृति, प्रथम-द्वितीय शती ई० ।

८४. मथुरा (कंकाली टीला), जैन तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, कुषाण काल ।

८५ दुर्जनपुर (विदिशा), जैन तीर्थंकर, विदिशा-संग्रहालय, चतुर्थ शती ई० ।

८६. मथुरा, जैन तीर्थंकर, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे०/१०४, गुप्त काल ।

८७. मथुरा, जैन तीर्थंकर, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/११८, कुषाण काल ।

८८. मथुरा, जैन तीर्थंकर, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/१५, कुषाण काल ।

८९. मथुरा (कंकाली टीला), जैन तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, ग्यारहवीं शती ई० ।

९० कौशाम्बी, चन्द्रप्रभ, इलाहाबाद-संग्रहालय, नवीं शती ई० ।

९१. पभोसा (इलाहाबाद), शान्तिनाथ, इलाहाबाद-संग्रहालय, ग्यारहवीं शती ई० ।

९२. आदिनाथ, कांस्य-प्रतिमा, बँगलौर-संग्रहालय, छठी शती ई० ।

९३. चौसा (बिहार), जैन तीर्थंकर ऋषभदेव, पटना-संग्रहालय, गुप्तकाल ।

९४. मथुरा, जैन तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, प्रथम शती ई० ।

९५. भीटा (इलाहाबाद), बुद्ध-वृक्ष, इलाहाबाद-संग्रहालय, द्वितीय शती ई० ।

९६ मध्य एशिया, बुद्ध-चित्र, सातवीं-आठवीं शती ई० ।

९७. कौशाम्बी, बौद्ध आयागपट्ट, विभागीय संग्रहालय, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, कुषाण काल ।

९८. अमरावती, बुद्धपद, प्रथम-द्वितीय शती ई० ।

९९. नागार्जुनकोण्ड, बुद्धपद, तृतीय शती ई० ।

१००. मथुरा, नृ-वराह प्रतिमा, मथुरा-संग्रहालय, द्वितीय शती ई० ।

१०१. खजुराहो, गरुड़ासीन विष्णु, इलाहाबाद-संग्रहालय, ग्यारहवीं शती ई० ।

१०२. इलाहाबाद, हनुमान, इलाहाबाद-संग्रहालय, बारहवीं शती ई० ।

१०३. साँची, स्तूप सं० २, वेदिका-स्तम्भ, अर्द्धचक्र-फलक, द्वितीय शती ई० पू० ।

१०४. सारनाथ, वेदिका-स्तम्भ, चक्र-फलक, प्रथम शती ई० पू० ।

१०५. कौशाम्वी, तोरण-खण्ड, इलाहाबाद-संग्रहालय, प्रथम शती ई० पू० ।

१०६. मथुरा (माट), चष्टन की कमरपेटिका का एक पदक, प्रथम शती ई० ।

१०७ पेड्डुमुडियम (दक्षिण भारत), प्रस्तर-फलक, मद्रास-संग्रहालय, आठवीं शती ई० ।

१०८. कावेरीपक्कम (दक्षिण भारत), प्रस्तर-फलक, मद्रास-संग्रहालय, नवीं शती ई० ।

१०९. एनाडि (तन्जौर), कांस्य प्रतिमा, मद्रास-संग्रहालय, नवीं शती ई० ।

११०. साँची, स्तूप सं० २, वेदिका स्तम्भ, द्वितीय शती ई० पू० ।

१११. साँची, स्तूप सं० २, वेदिका स्तम्भ, चक्र-फलक, द्वितीय शती ई० पू० ।

११२. तक्षशिला, श्री-चक्र, तृतीय शती ई० पू० ।

११३. लौरियानंदनगढ़, मृण्मूर्ति, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

११४. तेल अहमेर (मेसोपोटामिया), मृण्मूर्ति, तृतीय सहस्राब्दि ई० पू० ।

११५. सारी ढेरी (अफगानिस्तान), मृण्मूर्ति, लगभग ५० ई० पू० ।

११६. ट्रिपोली (यूक्रेन, रूस), मृण्मूर्ति ।

११७. चन्हूडैरो, मृण्मूर्ति ।

११८. वोग़ाज़कुई (अनातोलिया), चित्राक्षर अभिलेख, चौदहवीं शती ई० पू० ।

११९. गंगा-घाटी से प्राप्त मानवाकार ताम्र-आकृति, लगभग पन्द्रहवीं शती ई० पू० ।

१२०. मानभूमि, मानवाकार ताम्राकृति, पटना-संग्रहालय, लगभग पन्द्रहवीं शती ई० पू० ।

१२१. मोहेंजोदड़ो, मानवाकार मृण्मूर्ति, तृतीय-द्वितीय सहस्राब्दि ई० पू० ।

१२२. मोहेंजोदड़ो, मानवाकार मृण्मूर्ति, तृतीय-द्वितीय सहस्राब्दि ई० पू० ।

१२३. अहिच्छत्रा, मृण्मूर्ति के हार की मध्यमणि ।

१२४. साइक्लाडिक मूर्ति, क्रीट, लगभग तृतीय-द्वितीय सहस्राब्दि ई० पू० ।

१२५. वोगाज़कुई (अनातोलिया), चित्राक्षर, चौदहवीं शती ई० पू० ।

१२६. मैनहाई (कौशाम्बी), स्तंभ-शीर्ष, विभागीय संग्रहालय, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

१२७. भाजा, गुहाभिलेख, द्वितीय शती ई० पू० ।

१२८. जुन्नार, गुहाभिलेख, द्वितीय शती ई० पू० ।

१२९. पौनी (महाराष्ट्र), स्तूप-फलक, प्रथम शती ई० पू० ।

१३०. साँची-शिल्प, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

१३१ भरहुत-शिल्प, द्वितीय शती ई० पू० ।

१३२. हाथीगुम्फा, अभिलेख, प्रथम शती ई० पू० ।

१३३. उदयगिरि (उड़ीसा), रानीगुम्फा, प्रथम शती ई० पू० ।

१३४. खण्डगिरि (उड़ीसा), अनन्तगुम्फा, प्रथम शतो ई० पू० ।

१३५. अमरावती, वातायन-शीर्ष, प्रथम शती ई० ।

१३६. सारनाथ, वेदिका-स्तम्भ, सारनाथ-संग्रहालय, प्रथम शती ई० पू० ।

१३७. चन्द्रवल्ली (कर्नाटक), सातवाहन-सिक्का, प्रथम शती ई० पू० ।

१३८. ब्रह्मगिरि (कर्नाटक), कांस्य फलक, कोल्हापुर-संग्रहालय, द्वितीय-तृतीय शती ई० ।

१३९. सारनाथ, बौद्ध प्रतिमा के ऊपर छत्र, सारनाथ-संग्रहालय, प्रथम शती ई० ।

१४०. पंचाल-सिक्का, प्रथम शती ई० पू० ।

१४१. मथुरा-राजवंश का सिक्का, द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० ।

१४२. मथुरा, प्रस्तर-अभिलेख, मथुरा-संग्रहालय।
१४३. मथुरा, शक क्षत्रप शोडाप का अभिलेख, मथुरा-संग्रहालय, सं० ७६०.२०, प्रथम शती ई० का प्रारम्भ।
१४४. सातवाहन-सिक्का, प्रथम शती ई०।
१४५. पंचाल-सिक्का, प्रथम शती ई० पू०।
१४६. मथुरा-शिल्प, प्रथम शती ई०।
१४७. मथुरा, छत्र, अष्टमंगल, सारनाथ-संग्रहालय, कुषाण काल।
१४८. वेग्राम (अफगानिस्तान), दन्तकलाकृति, प्रथम-द्वितीय शती ई०।
१४९. मथुरा, जैन आयागपट्ट, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ सं० जे/२४८, प्रथम शती ई०।
१५० मथुरा, जैन आयागपट्ट, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, जे/२५० प्रथम शती ई०।
१५१. मथुरा, छत्र, अष्टमंगल, द्वितीय शती ई०।
१५२ संकिशा (उत्तर प्रदेश), मृण्मुद्रा, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, प्रथम-तृतीय शती ई०।
१५३. चन्द्रवल्ली (कर्नाटक), सातवाहन-सिक्के, लगभग प्रथम शती ई० पू०।
१५४. कुणिन्द-सिक्का, प्रथम शती ई० पू०।
१५५. यौधेय-सिक्का, प्रथम-तृतीय शती ई०।
१५६. भरहुत, वेदिका-स्तम्भ, अजकालक यक्ष के कमरबन्ध का लटकन, द्वितीय शती ई० पू०।
१५७. योधेय-कुलूत सिक्के; अहिच्छत्रा-मृण्मूर्तियाँ; शाहाबाद-मृण्मुद्रा।
१५८ अहिच्छत्रा, मृद्भाण्ड, तृतीय-चतुर्थ शती ई०।
१५९. मथुरा, वक्ष-लक्षण, जैन तीर्थंकर।
१६०. मथुरा, वर्धमान, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/३१, द्वितीय शती ई०।

१६१. मथुरा, जैन मूर्ति, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/७६, गुप्त-काल।

१६२. मथुरा, पार्श्वनाथ, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, प्रथम शती ई०।

१६३. मथुरा, वर्धमान, वक्ष-लक्षण, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/१६, तृतीय शती ई०।

१६४. मथुरा (कंकाली टीला), जैन तीर्थंकर, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/३३, द्वितीय शती ई०।

१६५. मथुरा, जैन मूर्ति, बृटिश संग्रहालय, लंदन, तृतीय शती ई०।

१६६. मथुरा, जैन तीर्थंकर, राज्य संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/११८, चौथी-पाँचवीं शती ई०।

१६७. मथुरा, जैन तीर्थंकर का वक्ष-लक्षण, कुषाण काल।

१६८. मथुरा, जैन तीर्थंकर का वक्ष-लक्षण, कुषाण काल।

१६९. उदयगिरि (विदिशा), विष्णु, चतुर्थ शती ई०।

१७०. मथुरा, जैन तीर्थंकर वर्धमान, कुषाण काल।

१७१. मथुरा, जैन तीर्थंकर, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० ०.१८१, गुप्तकाल।

१७२. मथुरा, जैन तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, सं० बी ७, गुप्तकाल।

१७३. मथुरा, जैन तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, सं० बी ६३, प्रथम शती ई०।

१७४. मथुरा, जैन तीर्थंकर, वक्ष-लक्षण, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे/१०८, कुषाण काल।

१७५. चौसा (बिहार), जैन तीर्थंकर, कांस्य प्रतिमा, पटना-संग्रहालय, सं० ६५३०, तीसरी-चौथी शती ई०।

१७६. बेसनगर (विदिशा), बलराम, ग्वालियर-संग्रहालय, पाँचवीं शती ई०।

१७७. मथुरा (कंकाली टीला), ऋषभदेव, मथुरा संग्रहालय, पाँचवीं शती ई०।

१७८. मध्य एशिया, बुद्ध का वक्ष-लक्षण, सातवीं-आठवीं शती ई०।

१७६. दुर्जनपुर (विदिशा), तीर्थंकर, विदिशा-संग्रहालय, चतुर्थ शती ई० ।

१८०. चौसा (विहार), ऋषभदेव, पटना-संग्रहालय, गुप्तकाल ।

१८१. वेनीसागर (विहार), विष्णु, पटना-संग्रहालय, सं० ६४, सातवीं शती ई० ।

१८२. श्रावस्ती, ऋषभदेव, आठवीं-नवीं शती ई० ।

१८३. मथुरा, वर्धमान, मथुरा-संग्रहालय, कुषाण काल ।

१८४. कौशाम्वी, चन्द्रप्रभ, इलाहावाद-संग्रहालय, नवीं शती ई० ।

१८५. मथुरा, तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, १०३८ वि० सं० ।

१८६. मथुरा, तीर्थंकर, मथुरा-संग्रहालय, ११३४ वि० सं० ।

१८७. पभोसा (इलाहावाद), शान्तिनाथ, ग्यारहवीं शती ई०; भीटा, वायु, वारहवीं शती ई०, इलाहावाद-संग्रहालय ।

१८८. पश्चिमी भारत, गरुड़ासीन विष्णु का वक्ष-लक्षण, चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती ई० ।

१८९. वसन्तगढ़-संग्रह से प्राप्त आदिनाथ की पीतल की मूर्ति का वक्ष-लक्षण, जैन मंदिर पिण्डवाड़ा, राजस्थान, छठी शती ई० ।

१९०. पश्चिमी भारत, विष्णु, वारहवीं-तेरहवीं शती ई० ।

१९१. मथुरा, योगनारायण, मथुरा-संग्रहालय, सं० ३७६, दसवीं शती ई० ।

१९२. गढ़वा (इलाहावाद), शिव, इलाहावाद-संग्रहालय, सं० ६४२, वारहवीं शती ई० ।

१९३. पश्चिमी भारत, शान्तिनाथ, कांस्य मूर्ति, विक्टोरिया एवं अलवर्ट संग्रहालय, लंदन, वारहवीं शती ई० ।

१९४. हरिहर मूर्ति में हरि के वक्ष का आधा लक्षण, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० एच/११६, मध्य काल ।

१९५. खजुराहो, विष्णु, इलाहावाद-संग्रहालय, सं० ३७७, ग्यारहवीं शती ई० ।

१९६. सिओर (सुल्तानपुर), चतुर्भुज विष्णु, राज्य संग्रहा ,
लखनऊ, सं० ०.१९९, लगभग नवीं शती ई० ।

१९७. सुल्तानपुर, विष्णु, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, मध्य युग ।

१९८. इलाहाबाद, सूर्य, राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० एच/३०,
लगभग १००० ई० ।

१९९. अकोटा (पश्चिमी भारत), आदिनाथ, कांस्य प्रतिमा, छठी
शती ई०; मथुरा, तीर्थंकर, मध्य काल; दक्षिण भारतीय कांस्य
मूर्ति, मध्य काल ।

२००. दक्षिण भारतीय कांस्य प्रतिमा, विष्णु, मध्य काल ।

२०१. दक्षिण भारतीय कांस्य प्रतिमा, विष्णु, चोल युग ।



अनुक्रम

श्रीवत्स

भारतीय कला का एक मांगलिक प्रतीक

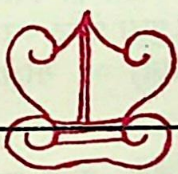


भारतीय कला में श्रीवत्स एक प्रतीक अथवा चिह्न के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इसका प्रारम्भिक स्वरूप एक मांगलिक चिह्न के रूप में था जो आगे चलकर एक महापुरुष-लक्षण के रूप में विकसित हो गया। मांगलिक चिह्न के रूप में इसकी सार्वजनीन लोकप्रियता भारतीय कला के विभिन्न माध्यमों से प्रकट होती है। भरहुत, साँची, सारनाथ, उदयगिरि-खण्डगिरि, अमरावती तथा मथुरा के उत्कीर्ण-शिल्प में इस प्रतीक के भिन्न-भिन्न अंकन प्राप्त हुए हैं। प्राचीन भारतीय सिक्कों तथा मृण्मुद्राओं पर भी इसके बहुल अंकन उपलब्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त जैन आयागपट्टों, मृण्मूर्तियों, मृद्भाण्डों, अभिलेखों, श्रीचक्रों तथा ताम्र-उपकरणों में भी इस प्रतीक का मांगलिक रूपांकन पाया गया है। महापुरुष-लक्षण के रूप में भी श्रीवत्स को जैन तीर्थङ्करों, बुद्धपदों, बुद्धमूर्तियों तथा विष्णु आदि विभिन्न देवताओं के वक्षस्थल पर उत्कीर्ण किया गया है। भारतीय कला के इस प्रतीक की यह व्यापक एवं लोकप्रिय परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। श्रीवत्स के अंकन का अस्तित्व भारतवर्ष में आज से लगभग तीन-चार सहस्र वर्ष से पाया गया है।

तमसः परमो धाता । शंखचक्रगदाधरः

श्रीवत्सवक्षो नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः ।

रामायण युद्ध, काण्ड १११।१२-१३



श्रीवत्स : एक मांगलिक चिह्न

जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मणधर्मावलम्वी सभी ग्रंथों में समान रूप से मांगलिक चिह्नों का वर्णन पाया गया है। विभिन्न जैन ग्रंथों में सभी तीर्थङ्करों के चिह्नों, चैत्यों, वृक्षों तथा उनके यक्ष-यक्षियों की सूची दी गई है[1]। इन सूचियों में उल्लिखित है कि दसवें तीर्थंकर शीतलनाथ का चिह्न श्रीवत्स था। जैन उपांग **औपपातिक सूत्र**, ३१ में अष्टमांगलिक चिह्नों को परिगणित किया गया है। उनमें स्वस्तिक, नंद्यावर्त, वर्द्धमानक, भद्रासन, कलश, दर्पण तथा मत्स्य-युग्म के साथ-साथ श्रीवत्स का भी उल्लेख है।[2]

१. आचारदिनकर; उत्तराध्ययन सूत्र; अभिधान चिन्तामणि (द्रष्टव्य रमेशचन्द्र मजूमदार सं०, दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी, बम्बई १९५३, पृ० ४२६); तिलोयपण्णत्ति; समवायांगसूत्र (हीरा लाल जैन, भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल १९६२, पृ० ३४९-५०)।

२. वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, वाराणसी १९७०, पृ० २१५।

रायपसेणियसुत्त, कण्डिका ६६ में 'मंगलभित्तिचित्र' के अन्तर्गत भी इन्हीं चिह्नों को गणना है। इसी ग्रंथ में अन्यत्र (सूत्र १५) तोरण पर अंकित अष्टमांगलिक चिह्नों का वर्णन है जिनमें श्रीवत्स भी सम्मिलित है। एक अन्य जैन ग्रन्थ **तिलोयपण्णत्ति** (त्रिलोक प्रज्ञप्ति) के दूसरे अधिकरण की २२वीं से ६२वीं गाथाओं में भवनों का वर्णन है जिनमें जिनालय भी थे। इन जैन मंदिरों में जिन-मूर्तियों के अतिरिक्त अष्ट-मांगलिक द्रव्य भी थे[1]। **आचारदिनकर** में इन अष्ट मांगलिक चिह्नों का महत्त्व इस प्रकार बतलाया गया है—

'कलश जिन का प्रतीक है, दर्पण आत्मदर्श के लिए है; भद्रासन तीर्थंकर के चरण-स्पर्श से पवित्र एवं संपूज्य है, स्वस्तिक शान्ति का बोधक है, वर्द्धमानक सम्पत्ति, यश तथा गुणों का संवर्द्धक है, नंद्यावर्त अपने नौ कोणों के कारण नव-निधियों का प्रतीक है, मीन-मिथुन काम का पताक-चिह्न है जो पराजित होने के कारण काम द्वारा जिन की पूजा प्रकट करता है तथा श्रीवत्स जिन के हृदय से प्रस्फुटित कैवल्य (ज्ञान) का साक्षात् स्वरूप है।[2]

वौद्धग्रन्थों में भी स्वस्तिक, नंद्यावर्त, वर्द्धमान, चक्र, पद्म तथा त्रिरत्न के साथ-साथ श्रीवत्स को भी मांगलिक चिह्न के रूप में अंकित किया गया है। **ललितविस्तर** में राजकुमार सिद्धार्थ के केश-विन्यास की एक सज्जा को श्रीवत्स कहा गया है—

> **श्रीवत्स-स्वस्तिक-नंद्यावर्त-वर्द्धमानसंस्थान-केशश्च महाराजः सर्वार्थ-सिद्धिः कुमारः।**[3]

इसी ग्रन्थ में अन्यत्र सुजाता द्वारा तथागत के लिए पायस पकाने का वर्णन है। वहाँ पर उबलते हुए दूध में श्रीवत्स, स्वस्तिक, नंद्यावर्त, पद्म,

---

१. हीरालाल जैन, उपरोक्त, पृ० २६३।

२. उमानन्द प्रेमानन्द शाह, जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर, (सं० अमलानन्द घोष), खण्ड ३, नई दिल्ली १६७५, पृ० ४७१।

३. ललितविस्तर, ७ सं० पी० एल० वैद्य, मिथिला विद्यापीठ, १६५८. पृ० ७५, पंक्ति २६)।

वर्द्धमान आदि मांगलिक चिह्नों की आकृतियों के बनने की बात कही गई है—

> तस्मिन् खल्वपि क्षीरे श्रीवत्स-स्वस्तिक-नंद्यावर्त-पद्म-वर्द्धमानादीनि मङ्गल्यानि संदृश्यन्ते स्म ।[1]

यद्यपि श्रीवत्स का उल्लेख ब्राह्मणधर्मावलम्बी ग्रन्थों में अत्यन्त प्राचीन काल से पाया गया है, परन्तु केवल महापुरुष-लक्षण के रूप में । मांगलिक चिह्न के रूप में इसका उल्लेख गुप्तोत्तर साहित्य में ही उपलब्ध हो सका है । बृहत्संहिता में श्रीवत्स को मांगलिक चिह्न के रूप में अंकित किया गया है । गज-लक्षण के प्रसंग में कहा गया है कि गजदन्त के काटने पर उसमें जैसे चिह्न बने दिखाई दें, राजा एवं राजा पर तदनुकूल प्रभाव पड़ता है । इस स्थल पर जिन चिह्नों के प्रभावों की चर्चा की गई है उनमें श्रीवत्स, वर्द्धमान, छत्र, चामर, ध्वज, प्रहरण, नंद्यावर्त तथा लोष्ठ हैं—

> श्रीवत्सवर्द्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु
> छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि । ६ .२
> प्रहरणसदृशेषु जयो नंद्यावर्ते प्रनष्टदेशाप्तिः
> लोष्ठे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्ति ।। ६४.३

अर्थात् गजदन्त के काटने पर यदि उसमें रक्त-रेखाओं से श्रीवत्स, वर्द्धमान, छत्र, ध्वज, चामर आदि चिह्न अंकित दिखाई दें तो क्रमशः आरोग्य, विजय, धन, संवृद्धि और सुखों की प्राप्ति होती है । यदि रेखाएँ प्रहरण (शस्त्र) जैसी हों तो विजय-श्री मिलती है । यदि गजदन्त में नंद्यावर्त चिह्न दिखाई पड़े तो राजा अपने हारे हुए राज्य को पुनः प्राप्त करता है, और यदि यह चिह्न लोष्ठवत् (मिट्टी के ढेले जैसा) हो तो राजा को वह राज्य फिर से मिलता है जिसे पहले वह प्राप्त कर चुका हो और अब खो दिया हो ।[2]

मांगलिक चिह्नों की संख्या प्रारम्भ में आठ थी, तभी इन्हें अष्ट-मांगलिक कहा गया । किन्तु कालान्तर में इनकी संख्या बढ़कर नौ, दस,

---

१. वही, पृ० १६५, पंक्ति १६-१७ ।
२. बृहत्संहिता, ६४।२, ३ (सं० पं० श्री अच्युतानन्दझा शर्मा), वाराणसी १६७०, पृ० ५४३ ।

ग्यारह, तेरह अथवा अठारह भी हो गई। एक वात और ध्यान देने योग्य है कि ये अष्टमांगलिक चिह्न आवश्यक रूप से कभी सुनिश्चित नहीं हुए। श्रीवत्स, स्वस्तिक, पुष्प, दर्पण, परशु, अंकुश, भद्रासन, कलश, माला, पुस्तक, कमण्डलु, मीन-मिथुन, वर्द्धमान, नंद्यावर्त, छत्र, चामर, ध्वज आदि विभिन्न मांगलिक चिह्नों में से कोई भी आठ अष्टमांगलिक स्वीकार कर लिए जाते थे। कभी-कभी इनका संपुंजन आठ की संख्या से अधिक भी हो जाता था जैसे साँची के विशाल स्तूप के उत्तरी तोरण पर एक फलक में १८ मालाएँ नागदन्तों पर लटकती अंकित की गई हैं जिनमें दो मांगलिक प्रतीकों से बनी हैं। इनमें एक में ग्यारह और दूसरे में तेरह प्रतीकों की गुरिया या मनके हैं। परन्तु डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इन्हें भी अष्ट-मांगलिक माला ही कहा था।[१]

भारतीय वाङ्मय में उल्लिखित इन अष्टमांगलिक चिह्नों को भारतीय कला में भी व्यापक रूप से उकेरा गया है। उत्कीर्ण- शिल्प, मृण्मूर्तियाँ, मृण्मुद्राएँ, मृद्भाण्ड, आयागपट्ट, छत्र, स्तम्भ-शीर्ष, कांस्य-उपकरण, दन्तकलाकृतियाँ, सिक्के, अभिलेख तथा वास्तुकला जैसे विभिन्न आयामों में श्रीवत्स का सुप्रतिष्ठित स्वरूप पाया जाता है।

उत्कीर्ण-शिल्प

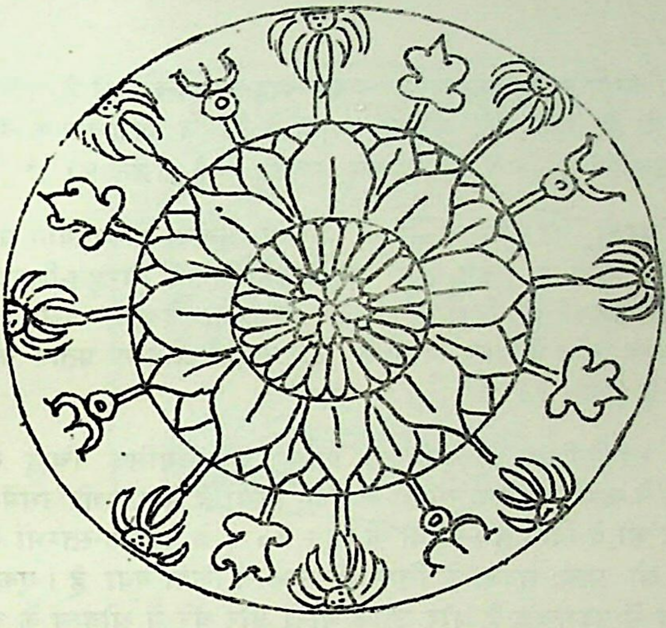
भरहुत, साँची, सारनाथ, मथुरा, पौनी (महाराष्ट्र), अमरावती तथा उदयगिरि-खण्डगिरि (उड़ीसा) के उत्कीर्ण-शिल्प में श्रीवत्स प्रतीक के विविध अंकन पाए गए हैं। भरहुत-शिल्प में चक्रों तथा अर्द्धचक्रों में श्रीवत्स के माध्यम से सजावट की गई है। भरहुत-वेदिका की एक सूची के चक्र-फलक में कमलदल है। इस चक्र के घेरे को चार श्रीवत्स, चार नन्दिपद तथा आठ उत्पल के प्रतीकों से सजाया गया है (चित्र १)[२]। एक दूसरे स्तम्भ के ऊपरी अर्द्धचक्र में भी श्रीवत्स का अंकन है जो कमल-कलिकाओं से घिरा है (चित्र २)[३]। पद्मदलों के साथ श्रीवत्स का अंकन करने वाला

---

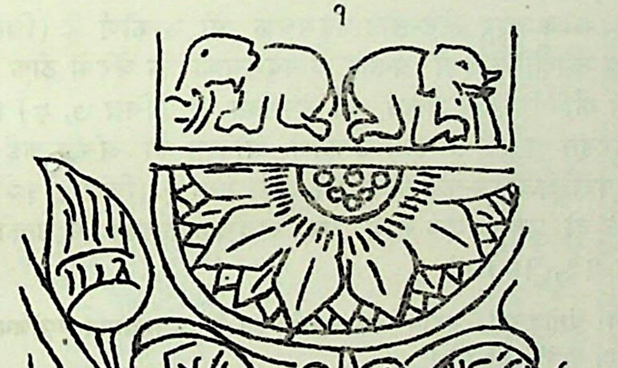
१. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना १९६४, पृ० १२२।

२. भारतीय संग्रहालय, कलकत्ता, भरहुत कक्ष, प्रदर्शन सं० १३६।

३. वही, सं० २०७।



१



२

चित्र सं० १—२

भरहुत का एक स्तम्भ-फलक इलाहाबाद-संग्रहालय में है (चित्र ३)[१]। भरहुत के ही एक अन्य वेदिका- स्तम्भ के निचले अर्द्धचक्र के बाहर अगल-बगल उत्कीर्ण पुष्प-पत्र श्रीवत्स की आकृति के हैं (चित्र ४)।[२]

वस्त्रों की सजावट में भी श्रीवत्स प्रतीक का उपयोग प्राचीन काल में किया जाता था। इस तथ्य की जानकारी हमें भरहुत-शिल्प के ही कई उत्कीर्ण फलकों से मिली है जिसमें सिरिमा देवता, यक्षी चन्दा तथा अजकालक यक्ष के कमरबन्ध के लटकन पर श्रीवत्स प्रतीक की डिज़ाइन अंकित है (चित्र ५)।[३]

साँची-शिल्प में श्रीवत्स प्रतीक के मांगलिक चिह्न का उपयोग शिल्पी ने कभी तो मात्र सज्जा के लिए किया है और कभी उसमें धार्मिकता का पुट भी दे दिया है। साँची के स्तूप सं० २ के वेदिका-स्तम्भों पर श्रीवत्स प्रतीक को प्रायः सज्जा के लिए ही उत्कीर्ण किया गया है। एक चक्रफलक के केन्द्र में पद्मचक्र है और उसके चारों ओर घेरे में श्रीवत्स के चार प्रतीक हैं जिनके बीच-बीच चार छोटे-छोटे पद्मचक्र भी उत्कीर्ण हैं (चित्र ६)।[४] कुछ अन्य चक्रफलकों में इसी प्रकार के पद्मचक्रों के घेरे में ठीक ऊपर की ओर श्रीवत्स का एकाकी अंकन भी उपलब्ध है (चित्र ७, ८)।[५] पद्म-पुष्पों एवं पुरइन-पातों के मध्य उत्कीर्ण श्रीवत्स का अंकन कई वेदिका-स्तम्भों के ऊपरी अर्द्धचक्र-फलकों में भी पाया गया है (चित्र ९-१२)।[६] ऐसे ही श्रीवत्स के दो प्रतीक एक साथ अन्य अर्द्धचक्र-फलकों में उत्कीर्ण किए गए हैं (चित्र १३, १४)।[७]

---

१. द्रष्टव्य प्रमोदचन्द्र, **स्टोन स्कलपचर्स इन दि इलाहाबाद म्यूजियम**, बम्बई १९७०, फलक ३६ बी।

२. द्रष्टव्य वही, फलक ४० ए।

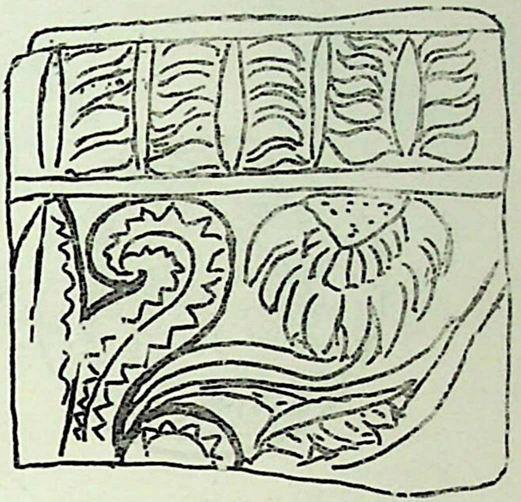
३. भारतीय संग्रहालय, भरहुत कक्ष, प्रदर्शन सं० २१३ द्रष्टव्य, शिवराममूर्ति, **दि आर्ट ऑव इंडिया**, न्यूयार्क १९७७, फलक ७७, ७८।

४. स्तूप सं० २, स्तम्भ ५३बी। द्रष्टव्य मार्शल, फूशे एवं मजूमदार, **दि मान्यूमेण्ट्स ऑव साँची**, लन्दन १९४०, खण्ड ३, फलक ८४।

५. स्तम्भ सं० २२ बीं (उपरोक्त, फलक ७८), ४८ए तथा ५१ ए (वही, फलक ८३)।

६. स्तम्भ ७५ बी (वही, फलक ८८)।

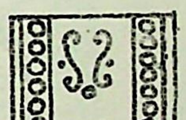
७. स्तम्भ ८३ बी (वही, फलक ९०)।



३



४

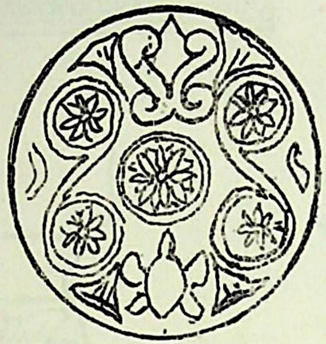


५

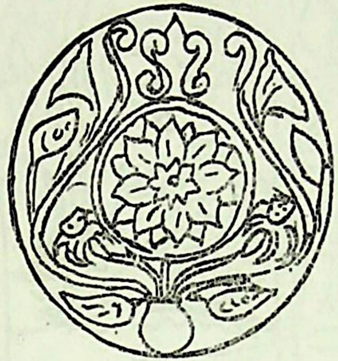
चित्र सं० ३—५



६



७

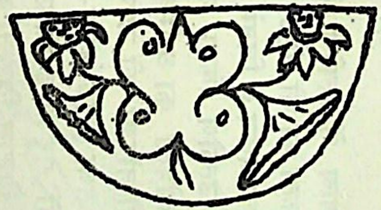


८

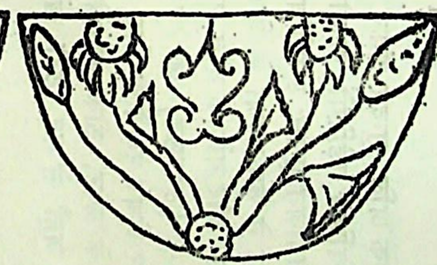
चित्र सं० ६—८



१३



९



१०



११



१४



१२

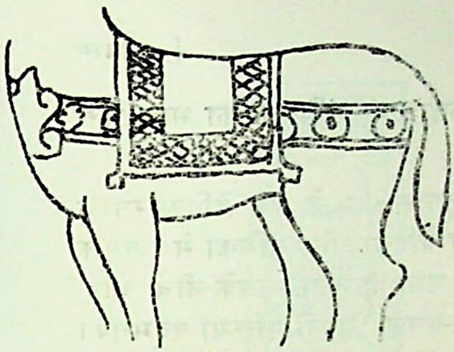
चित्र सं० ९—१४

सज्जा के लिए प्रयुक्त श्रीवत्स का एक अति सुन्दर अंकन विशाल स्तूप के ऊपरी तोरण पर पाया गया है। विभिन्न वड़ेरियों के बीच खड़ी सूचियों के अगल-वगल अश्वारोहियों का समायोजन मूलतः ऊपरी वड़ेरी का भार-वहन करने के लिए, परन्तु वाह्य दृष्टि से रूप-सज्जा के लिए किया गया है। इनमें दाहिनी ओर के अश्व की पूँछ और गले के नीचे से गुजरने वाली पद्मबेलि से अलंकृत एक पट्टी है (उरच्छद) जो अश्व की पीठ के आस्तरण (जीन) को अपने स्थान पर स्थिर रखने के लिए अश्व के अंग पर कसकर लपेटी गई है। इस पट्टी के ऊपर, ठीक अश्व के गले के नीचे, श्रीवत्स की आकृति की एक कटिया है जहाँ से यह पट्टी खोली एवं कसी जाती होगी (चित्र १५)।[१]

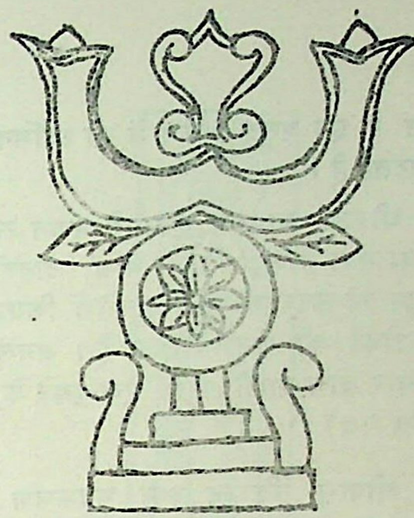
जैसा कि पहले कहा जा चुका है, साँची-शिल्प में उत्कीर्ण श्रीवत्स के प्रतीक में सज्जा या सजावट के साथ-साथ धार्मिकता का भी संपुट सन्निहित है। इस तथ्य को प्रकट करने के लिए ऐसे अनेक अंकन हैं जिनमें श्रीवत्स को धर्मचक्र, त्रिरत्न अथवा स्तूप के संसर्ग में उत्कीर्ण किया गया है। वेदिका, छत्र तथा मालाओं की उपस्थिति से श्रीवत्स का धार्मिक स्वरूप स्वयमेव प्रकट हो जाता है। विशाल स्तूप के सभी तोरणों की ऊपरी वड़ेरी के ऊपरी तल पर बीचो-बीच पहले एक धर्मचक्र तथा उसके अगल-वगल दो त्रिरत्न थे। अब केवल उत्तरी तथा पूर्वी तोरणों पर ही इनकी उपस्थिति अवशिष्ट हैं, अन्यत्र वे नष्ट हो चुके हैं। इन विशाल त्रिरत्नों को तिहरे चबूतरे पर स्थित पद्मचक्र के आसन पर अधिष्ठित किया गया है जिनकी मध्य यष्टि या नोक के स्थान पर श्रीवत्स का प्रतीक समुपस्थित है (चित्र १६)।[२] इस सम्मानित स्थिति वाले त्रिरत्न के अंक में समाविष्ट विशाल-काय श्रीवत्स निःसन्देह संपूज्य जान पड़ता है।

नागदन्तों पर लटकती १८ मालाओं वाले फलक में ऊपर एक चित्रित चक्रासन पर विशाल एवं चित्रित त्रिरत्न है जिसके मध्य अंग पर श्रीवत्स का प्रतीक अंकित है। त्रिरत्न के ऊपर छत्र है जिसमें दोनों ओर तीन-तीन मालाएँ लटक रही हैं। त्रिरत्न एवं आसन-चक्र के वीच अगल-वगल निकले पत्रों से भी एक-एक माला लटक रही है (चित्र १७)।[३]

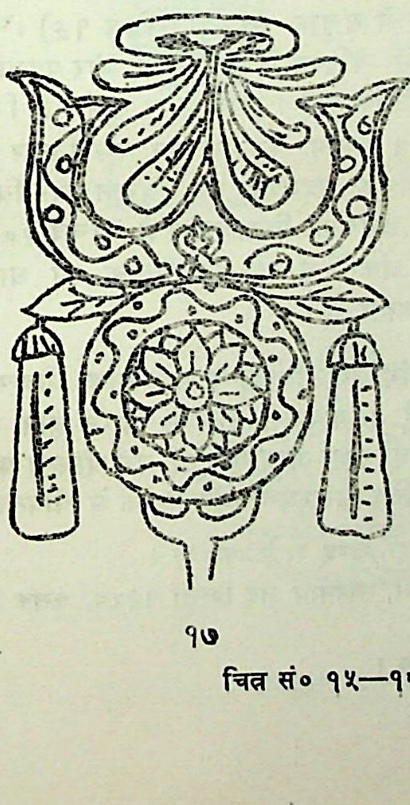
१. वही, खण्ड २, फलक २२।
२. वही, फलक २०, २१, २४, २६, २८, ३८, ३६ एवं ४३।
३. वही, फलक ३७ ए।



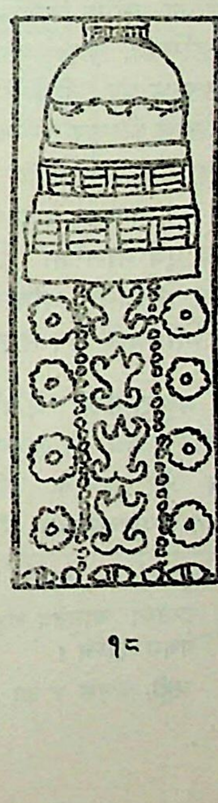
१५



१६



१७



१८

चित्र सं० १५—१८

श्रीवत्स के इस अनूठे अंकन में भी धार्मिकता एवं पवित्रता का भाव भरा जान पड़ता है।

श्रीवत्स का एक ऐसा ही अंकन स्तूप सं० २ के एक वेदिका-स्तम्भ पर पाया गया है जहाँ तिहरी मेधि, दोहरी वेदिका और हर्मिका से संयुक्त एक स्तूप को ऊपर की ओर उत्कीर्ण किया गया है तथा उसके नीचे चार-चार प्रतीकों की तीन पंक्तियाँ हैं। अगल-बगल वाली पंक्तियाँ पद्मचक्रों की हैं और बीच वाली पंक्ति एक-दूसरे के नीचे उत्कीर्ण चार श्रीवत्सों की है (चित्र १८)।[१]

श्रीवत्स, त्रिरत्न तथा भद्रकलश के संसर्ग में श्रीवत्स के अंकन सारनाथ से प्राप्त शुङ्गयुगीन वेदिका-स्तम्भों पर भी उपलब्ध हुए हैं। नीचे से ऊपर तक उत्कीर्ण एक वेदिका-स्तम्भ पर चार फलक हैं। नीचे के दो फलकों में तिहरे आसनों पर अधिष्ठित दो भद्रकलश हैं जिनसे पुष्पगुच्छ निकल रहे हैं। तीसरे फलक में वेदिका से आवेष्टित तिहरे आसन पर श्रीवत्स का प्रतीक आसीन है। चौथे और अंतिम फलक में वेदिका से घिरा मेधि, हर्मिका, छत्र एवं मालाओं से संयुक्त स्तूप है (चित्र १९)।[२] एक अन्य स्तम्भ पर नीचे के फलक में वेदिका से आवेष्टित और पद्मांकित चबूतरे वाले त्रितल पर श्रीवत्स प्रतिष्ठित है। इसके ऊपर कलश है जिससे निकलता एक अष्टभुजी स्तम्भ है। स्तम्भ के ऊपर पुनः एक त्रितल शीर्ष है जिस पर कलश, कलश पर पद्मचक्र, पद्मचक्र पर त्रिरत्न और त्रिरत्न पर छत्र एवं मालाओं से मण्डित धर्मचक्र विराजमान है (चित्र २०)।[३] सारनाथ से प्राप्त श्रीवत्स के इन अंकनों से भी इस प्रतीक का धार्मिक महत्त्व निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाता है।

मथुरा-कला में भी अन्य मांगलिक चिह्नों के साथ-साथ श्रीवत्स को भी विविध ढंग से उकेरा गया है। कंकाली टीले से प्राप्त होने वाले प्राचीन जैन स्तूप के वेदिका-स्तम्भों तथा आयागपट्टों पर श्रीवत्स प्रतीक के अंकन उपलब्ध हुए हैं। एक वेदिका-स्तम्भ के चक्र-फलक में श्रीवत्स का

---

१. स्तूप सं० २, स्तम्भ ४४ सी (वही, खण्ड ३, फलक८३)।

२, द्रष्टव्य वासुदेव शरण अग्रवाल, सारनाथ, नई दिल्ली १९५८, फलक ४ का प्रथम स्तम्भ।

३. वही, फलक ४ का दूसरा स्तम्भ।



१९



२०



२१

चित्र सं० १९—२१

अत्यन्त सरल स्वरूप अभ्यंकित है जो आमने-सामने फन उठाए दो सर्पो की आकृति जैसा है (चित्र २१)।[१] संभवत: श्रीवत्स के इसी स्वरूप के कारण मुद्राशास्त्रियों ने इसे 'नाग-सिम्बल' की संज्ञा दी थी।[२] चौरासी के निकट पाए गए एक द्वार-खण्ड के पार्श्व में गरुड़ तथा श्रीवत्स प्रतीक की सजावट है। यहाँ श्रीवत्स का स्वरूप शुंगयुगीन साँची-शिल्प जैसा ही जान पड़ता है (चित्र २२)।[३] गायत्री टीले से मिले तीसरी-चौथी शती ई० के एक प्रस्तर-फलक का किनारा सुन्दर पत्रलता से अलंकृत है जिसमें भद्रासन तथा श्रीवत्स के प्रतीक भी फूलों के समान उत्कीर्ण हैं। (चित्र २३)।[४]

श्रीवत्स प्रतीक का यह अलंकरण दक्षिण भारत के बौद्ध शिल्प में भी इसी रूप में पाया गया है। आन्ध्र प्रदेश के गुण्टूर जिले के कृष्णापल्ली नामक स्थान पर एक बौद्ध स्तूप के अवशेष पाए गए हैं। इन अवशेषों में एक अर्द्धचक्र-फलक में श्रीवत्स से नि:सृत पद्म-गुच्छ द्रष्टव्य हैं।[५] स्तूप पर पाए गए द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० के ब्राह्मी अभिलेखों के आधार पर श्रीवत्स का यह अलंकरण भरहुत-साँची का समकालीन जान पड़ता है। महाराष्ट्र के पौनी नामक स्थान से मिले प्रथम शती ई० पू० के बौद्ध स्तूप के उत्कीर्ण अवशेषों में भी श्रीवत्स को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है।[६]

मालाओं में मनकों अथवा गुरियों के रूप में विभिन्न प्रतीकों का प्रयोग कितना प्राचीन है इसका अनुमान शुंगयुगीन साँची एवं भरहुत के

---

१. द्रष्टव्य विन्सेंट स्मिथ, दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टिक्विटीज़ ऐट मथुरा, वाराणसी, १९६९, फलक ६९।२।

२. रैप्सन, क्वाइन्स ऑव आन्ध्र डायनेस्टी, फलक ८, चित्र २०७; आनन्द कुमार स्वामी, 'इण्डियन आर्कीटेक्चरल टर्म्स', जर्नल ऑव दि अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, खण्ड ४८, सं० ३, पृ० २७०।

३. द्रष्टव्य नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा १९६६, फलक ५७।

४. वही, फलक ७५।

५. द्रष्टव्य ए० डब्ल्यू० खान, ए मोनोग्राफ ऑन ऐन अर्ली बुद्धिस्ट स्तूप ऐट केसनापल्ली, हैदराबाद १९६९, फलक ४।

६. द्रष्टव्य पृथ्वीकुमार अग्रवाल, श्रीवत्स : दि बेब ऑव गाडेस श्री, वाराणसी, १९७४, रेखाचित्र ६५।





चि सं० २२—२३

शिल्प से सहज ही लगाया जा सकता है। साँची-स्तूप के उत्तरी तोरण के एक स्तम्भ-फलक में १८ मालाओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अत्यन्त सुरुचिपूर्ण ढंग से उत्कीर्ण इन मालाओं में दो क्रमशः ग्यारह और तेरह प्रतीक-गुरियों से बनी हैं। इनमें चक्र, मीन-मिथुन, दर्पण, परशु, अंकुश, पंकज, वैजयन्ती, क्षुर आदि के साथ-साथ श्रीवत्स का भी एक-एक प्रतीक है (चित्र २४)।[1] साँची-शिल्प की इन मालाओं को डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अष्टमांगलिक मालाएँ कहा था।[2] इन अष्टमांगलिक मालाओं का उद्भव अष्टमांगलिक चिह्नों के आधार पर ही हुआ होगा जिन्हें प्रायः सभी भारतीय धर्म-ग्रंथों में समान रूप से स्थान प्राप्त हुआ था।

मालाओं में मनकों के रूप में मांगलिक प्रतीकों के प्रयोग का ऐसा ही एक उदाहरण भरहुत-शिल्प से प्राप्त हुआ है। यक्षी चन्दा के गले में छलड़ी तौंक है जिसकी प्रथम तीन लड़ियों के ऊपर बीचोबीच पाँच प्रतीक जैसे मनके जड़े हैं। श्रीवत्स मध्य में है, उसके अगल-बगल क्रमशः एक-एक अंकुश और पीपल-पत्र है (चित्र २५)।[3]

वैशाली की खुदाई से उत्तर कुषाण काल के चाँदी के एक हार की पाँच गुरियाँ मिली हैं जिनका स्वरूप मीन-मिथुन, भद्रासन, पताका, श्रीवत्स और पुष्प जैसा है (चित्र २६)।[4]

मृण्मूर्तियाँ

मृण्मूर्तियों में भी श्रीवत्स के विविध उपयोग रूपायित हुए हैं, कहीं मध्यमणि के रूप में तो कहीं शिरोभूषा के रूप में। अहिच्छत्रा से प्राप्त शुंगकालीन मिथुन मृण्मूर्तियों पर नारियों के गले में जो लम्बे-लम्बे हार दिखाए गए हैं उनमें अगल-बगल क्षुर एवं वज्र से घिरा श्रीवत्स मध्यमणि

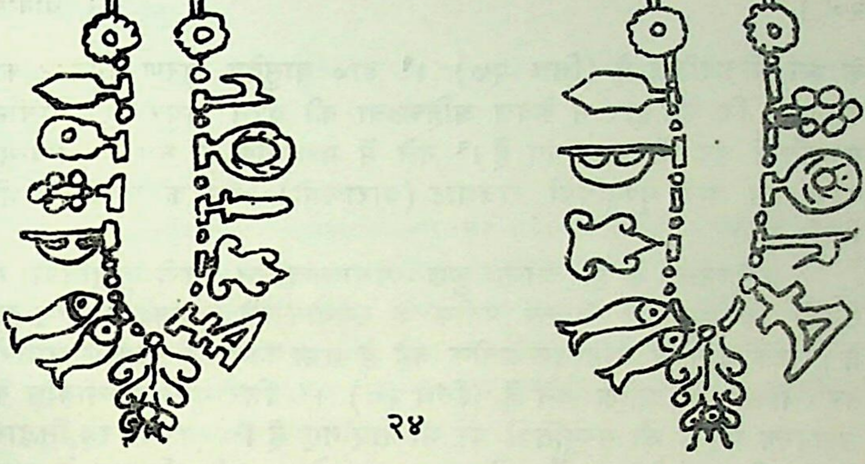
---

१. द्रष्टव्य मार्शल एवं अन्य, उपरोक्त, खण्ड २, फलक ३७ ए।

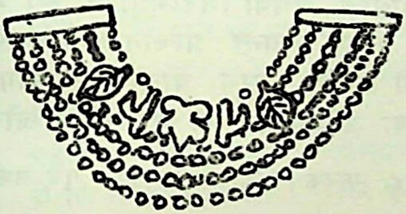
२. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १२२।

३. वासुदेव शरण अग्रवाल, स्टडीज़ इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी १९६५, फलक ३।

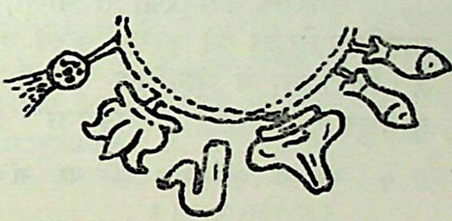
४. द्रष्टव्य इण्डियन आर्कियोलॉजी १९५८-५९ ए रिव्यू, फलक ११ ए।



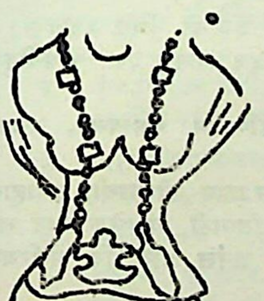
२४



२५



२६



२७



२८

चित्र सं० २४—२८

के रूप में प्रदर्शित है (चित्र २७) ।[1] डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है कि ऐसे हार न केवल अहिच्छत्रा की वरन् मथुरा की प्राचीन मृण्मूर्तियों पर भी पाए गए हैं।[2] गले में मध्यमणि के रूप में श्रीवत्स-पदक पहने नारी मृण्मूर्तियाँ राजघाट (वाराणसी) और कौशाम्बी से भी मिली हैं।[3]

अहिच्छत्रा से ही प्राप्त कुछ पंचालकालीन नारी-मृण्मूर्तियों से उनकी शिरोभूषा में श्रीवत्स प्रतीक के उपयोग की जानकारी प्राप्त हुई है। उनके जूड़ों में मांगलिक प्रतीक जड़े हैं तथा कान पर लटकती झालरों पर श्रीवत्स के प्रतीक बने हैं (चित्र २८) ।[4] शिरोभूषा में श्रीवत्स के उदाहरण मथुरा की मृण्मूर्तियों पर भी पाए गए हैं।[5] स्मरण रहे सिद्धार्थ के केश-विन्यास के रूप में श्रीवत्स का उल्लेख **ललितविस्तर** में पाया गया है।

उपरोक्त उदाहरणों से माला, तावीज अथवा शिरोभूषा के रूप में मांगलिक चिह्नों को धारण करने की पद्धति अत्यन्त प्राचीन जान पड़ती है। शिरोभूषा में मांगलिक चिह्नों को धारण करने वाली मृण्मूर्तियाँ तामलुक,[6] कौशाम्बी,[7] अंगईखेड़ां[8] तथा अहिच्छत्रा[9] से पाई गई हैं और

---

१. द्रष्टव्य **एन्शियण्ट इण्डिया**, सं० ४, फलक ३२, चित्र १२, १४ तथा रेखा-चित्र ५०।१।
२. वही, पृ० ११०; 'टेराकोटाज़', **जर्नल ऑव दि यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी**, खण्ड ६, चित्र ६, १०, १२ एवं १३; वही, खण्ड १२, भाग २: पृ० ५०, चित्र ३; **इण्डियन आर्कियोलॉजी—ए रिव्यू**, १९६७-६८, फलक २९ ए।
३. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ४, ५।
४. **एन्शियण्ट इण्डिया**, सं० ४, पृ० ११४, फलक ३३ बी, चित्र २६।
५. द्रष्टव्य कृष्णदत्त वाजपेयी, **मथुरा**, लखनऊ १९५६, फलक ३क; पृथिवीकुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ६-९।
६. द्रष्टव्य एस० के० सरस्वती, **ए सर्वे ऑव इण्डियन स्कल्पचर**, कलकत्ता १९५७, फलक १९, चित्र ८५।
७ द्रष्टव्य सतीश चन्द्र काला, **टेराकोटा फिगरीन्स फ्राम कौशाम्बी**, इलाहाबाद, १९५०, फलक ५ ए तथा ५ सी ; ऋषिराज त्रिपाठी, 'ए प्लेक विद लक्ष्मी फ्राम कौशाम्बी इन इलाहाबाद म्यूज़ियम', **जर्नल ऑव दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट**, खण्ड २१, सं० ४, चित्र ९।
८. द्रष्टव्य जगदीश गुप्त, 'आयुधालंकृत शिरोभूषा-युक्त बलिदेवी की रहस्यमयी मृण्मूर्तियाँ', **गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रन्थ**, लखनऊ १९६७, पृ० ५०२-०८, चित्र ५, ६, ८।
९. द्रष्टव्य **एन्शियण्ट इण्डिया**, सं० ४, फलक ३३ बी, चित्र २६।

विद्वानों ने इन नारी मूर्तियों की पहचान प्रायः वैदिक देवी सिनीवाली से की है।[1]

मृण्मुद्राएँ

श्रीवत्स के मांगलिक स्वरूप की प्रतिष्ठा अनेक मृण्मुद्राओं पर भी की गई थी। स्पूनर द्वारा उत्खनित कुमराहार से मृण्मुद्रा की एक ऐसी छाप मिली है जिसमें शंख, चक्र, स्वस्तिक के साथ श्रीवत्स का चिह्न अंकित है।[2] द्वितीय शती ई० पू० की यह मृण्मुद्रा श्रीवत्स के प्रतीक को अंकित करने वाली संभवतः प्राचीनतम मृण्मुद्रा है। एक अन्य मृण्मुद्रा पर श्रीवत्स का एकाकी अंकन है।[3]

शाहावाद (जिला हरदोई, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त एक गोल मृण्मुद्रा पर एक गोलाकार डिज़ाइन है जो दो श्रीवत्स तथा दो त्रिरत्नों के प्रतीकों के संयोजन से वनी है। मुद्रा के दूसरी ओर व्याल से खेलते एक वालक का अंकन है (चित्र २६)।[4] मुद्रा के खोजक इलाहावाद विश्व-विद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डा० जगदीश गुप्त इस दृश्य की पहचान कालिदासकृत **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** में वर्णित सिंह-शावक से खेलते भरत से करते हैं और इस आधार पर मुद्रा के निर्माण का समय प्रथम शती ई० पू० ठहराते हैं।[5]

इसी प्रकार अनेक लघु मृण्मुद्राएँ भीटा, कौशाम्बी, झूँसी (सभी इलाहावाद जिले के अन्तर्गत), राजघाट (वाराणसी) तथा वसाढ़ (मुजफ्फरपुर) से मिली हैं।[6] इन मृण्मुद्राओं पर प्रायः अकेले श्रीवत्स का

---

१. गोवर्द्धनराय शर्मा, **एक्सकेवेशन्स ऐट कौशाम्बी**, इलाहाबाद १६६०, पृ०१२२; जगदीश गुप्त, उपरोक्त, पृ० ५०४।

२. आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, १६१२-१३, पृ० ८२, फलक ४६।३; द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ५१।

३. वही, फलक ४६।४।

४. द्रष्टव्य **पुरातत्व**, (बुलेटिन ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी ऑव इण्डिया). सं० ६, फलक ५ ए।

५. वही, पृ० ६०।

६. विस्तृत विवरण के लिए द्रष्टव्य किरण कुमार थपल्याल; **स्टडीज़ इन एन्शियण्ट इण्डियन सील्स**, लखनऊ १६७२।

अंकन है और उसके नीचे मुद्रा के स्वामियों के नाम ब्राह्मी लिपि में अंकित हैं (चित्र ३०-३२)।[१] कुछ मुद्राओं पर श्रीवत्स के साथ-साथ शंख, चक्र अथवा वृक्ष आदि अन्य प्रतीक भी अंकित हैं (चित्र ३३, ३४)।[२] कुछ मुद्राओं पर उनके स्वामियों के नाम के स्थान पर अन्य प्रकार के लेख भी पाए गए हैं।[३] मथुरा-संग्रहालय में श्रीवत्सांकित एक ऐसी मृण्मुद्रा है जिस पर ब्राह्मी लिपि में 'अनन्तस्य' लेख उत्कीर्ण है।[४] शंख, चक्र आदि प्रतीकों के संसर्ग तथा स्वामियों के नाम के आधार पर इन मृण्मुद्राओं पर श्रीवत्स का वैष्णवी स्वरूप ही अभ्यंकित हुआ है।

लिपि के आधार पर उपरोक्त सभी मृण्मुद्राओं को प्रायः कुषाण तथा प्रारम्भिक गुप्तकाल का माना गया है।[५] परन्तु इन मृण्मुद्राओं पर अंकित श्रीवत्स का स्वरूप शुंगकालीन उत्कीर्ण-शिल्प में अंकित श्रीवत्स जैसा ही है तथा इन पर अंकित लेख पंचाल-सिक्कों के समान श्रीवत्स प्रतीक के नीचे ही अंकित हैं। इस आधार पर इन मृण्मुद्राओं के निर्माण का सम्भावित काल ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियाँ ही अधिक तर्कसंगत जान पड़ता है।

उपरोक्त मृण्मुद्राओं की पुरातात्त्विक खोज करने वाले विद्वान् इन पर अंकित श्रीवत्स प्रतीक को न पहचान सके और उन्होंने इस प्रतीक का भिन्न-भिन्न वर्णन उपस्थित किया है। भीटा के उत्खनक सर जॉन मार्शल ने श्रीवत्स के प्रतीक को कुछ मुद्राओं पर 'त्रिशूल जैसा' तथा अन्य पर 'एक अनिश्चित चिह्न' कहा है।[६] वसाढ़ से प्राप्त मोहरों के इस प्रतीक को

---

१. किरण कुमार थपल्याल, उपरोक्त, फलक १६।२,।२६।२, ३२।७।

२. वही, फलक ८।६, २७।६।

३. वही, पृ० १६७, फलक २६।२।

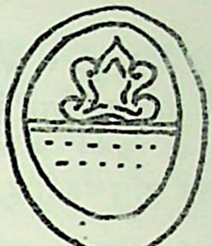
४. वही, पृ० १६१, पाद टिप्पणी।

५. वही, पृ० ६६।

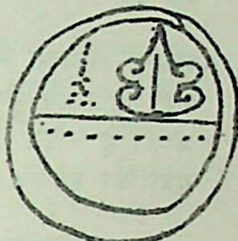
६. वही, पृ० १६१, पाद टिप्पणी (ग्रार्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, १६११-१२, पृ० ५० और आगे, सं० क्रमशः २२ तथा ३६, ३६, ४०, ८५, ८६)।



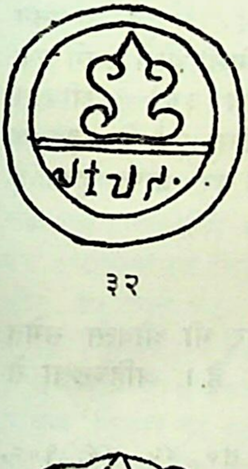
२९



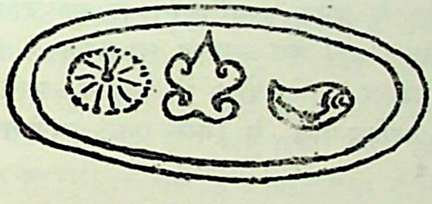
३०



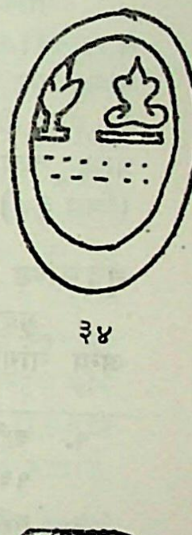
३१



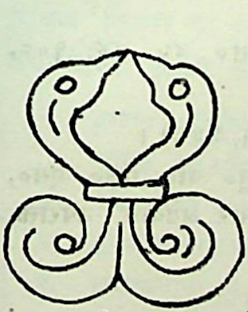
३२



३३



३४



३५



३६



३७

चित्र सं० २९—३७

ब्लॉक महोदय ने 'अलंकृत त्रिशूल'[१] तथा स्पूनर ने 'शील्ड सिम्बल'[२] कहा है। इन मृण्मुद्राओं और शाहाबाद से मिली मृण्मुद्रा में एक विशेष अन्तर है : इन मुद्राओं का स्वरूप आर्थिक है जब कि शाहाबाद वाली मुद्रा का स्वरूप सांस्कृतिक जान पड़ता है।

उत्तर प्रदेश के संकिशा नामक स्थान से एक विचित्र मृण्मुद्रा मिली है जिसमें आमने-सामने अपनी लम्बी गर्दनों को उठाकर चोंच में चोंच जोड़े दो पक्षियों का अंकन है, और उनका यह अंकन श्रीवत्स के आकार जैसा है (चित्र ३५)।[३] दक्षिण भारत के अरिकमेडु नामक स्थान से मिली एक मृण्मुद्रा पर स्वस्तिक और वैजयन्ती प्रतीकों के बीच एक आसन पर श्रीवत्स के प्रतीक को स्थापित किया गया है।[४]

पाकिस्तान के पिरक नामक स्थान पर १९६८ ई० में हुए उत्खनन से सातवीं सतह में अनेक मृण्मूर्तियाँ तथा मृण्मुद्राएँ मिली थीं। उनमें एक मृण्मुद्रा पर श्रीवत्स का रूप अत्यन्त साधारण है (चित्र ३६)।[५] श्रीवत्स का ऐसा ही स्वरूप भट्टिप्रोलु में द्वितीय शती ईसा पूर्व के स्तूप से प्राप्त तृतीय अस्थि-पात्र से मिले एक स्वर्ण-पदक पर प्राप्त हुआ है (चित्र ३७)।[६]

मृद्भाण्ड

मृद्भाण्डों तथा मुलायम पत्थर के बर्तनों पर भी श्रीवत्स समेत अन्य मांगलिक प्रतीकों का अंकन-चित्रण पाया गया है। अहिच्छत्रा से

---

१. वही, (उपरोक्त, १९०३-०४, पृ० २२० और आगे, सं० ४२, ४४, १०८, १३५)।
२. वही, (उपरोक्त, १९१३-१४, सं० १६३, २१६, २३१, ५५६)।
३. हीरानन्द शास्त्री, एक्जकेवेशन्स ऐट संकिसा, जे० यू० पी० एच० एस०, खण्ड ३ (१९२७), पृ० ९९; द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, चित्र, ३७।
४. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ७१।
५. द्रष्टव्य डी० पी० अग्रवाल एवं ए० घोष (सं०), रेडियो कार्बन ऐण्ड इण्डियन आर्कियोलॉजी, बम्बई, १९७३, पृ० १६५, चित्र ३।१।
६. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ४४।

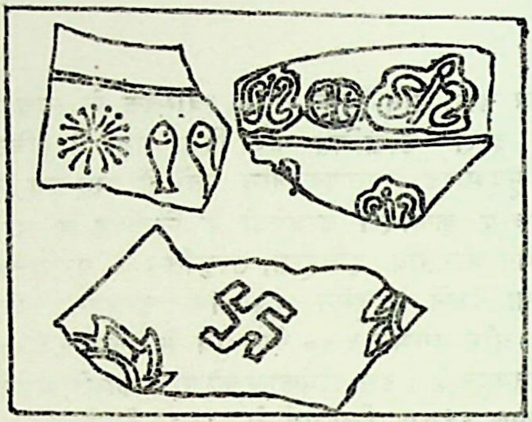
प्राप्त मृद्भाण्डों पर चक्र, मीन-मिथुन तथा स्वस्तिक के साथ श्रीवत्स का प्रतीक भी ठप्पों द्वारा उत्खचित कर दिया गया है (चित्र ३८)।[1] अहिच्छत्रा के ये मृद्भाण्ड कुषाणकालीन पर्तों में पाए गए हैं।[2] पिछले ६-७ वर्षों में प्राचार्य कृष्णदत्त वाजपेयो के निर्देशन में सागर विश्व-विद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग ने मध्य प्रदेश के गुना जिले में तुमैन (प्राचीन तुम्ववन) का विधिवत् उत्खनन किया है और लगभग ५०० ईसा पूर्व से लेकर १८०० ईसवी तक के अवशेष खोज निकाले हैं। इस दीर्घकाल को पाँच कालों में विभक्त किया गया है। प्रथम काल (५०० ईसा पूर्व से २०० ईसवी तक) के अन्तर्गत प्राप्त मुलायम पत्थर के वर्तनों पर कमल, श्रीवत्स तथा अन्य प्रतीकों के रेखांकन मिले हैं।[3]

आयागपट्ट

मथुरा से प्राप्त जैन आयागपट्टों पर मांगलिक चिह्नों के वहुल अंकन उपलब्ध हैं। एक आयागपट्ट के केन्द्र में छत्र एवं मालाओं से आवेष्टित बैठी मुद्रा में तीर्थङ्कर की एक मूर्ति है। इसके ऊपर-नीचे तथा अगल-वगल त्रिरत्न के चार प्रतीक हैं। वाएँ तथा दाएँ किनारे क्रमशः चक्र एवं हस्ति-शीर्ष वाले स्तम्भों से सजे हैं। ऊपर तथा नीचे के किनारों पर अष्टमांगलिक चिह्न उत्कीर्ण हैं। ऊपर मीन-मिथुन, भद्रासन, श्रीवत्स और नंद्यावर्त तथा नीचे नन्दिपद, पुष्पमाला, पवित्र पुस्तक और मंगल-कलश हैं (चित्र ३९)।[4] दूसरे आयागपट्ट पर केन्द्र को चार वड़े त्रिरत्नों से सजाया गया है तथा ऊपरी किनारे पर श्रीवत्स, स्वस्तिक तथा पद्म और निचले किनारे पर स्वस्तिक, पुष्प-पात्र, मीन-मिथुन, कमण्डलु, रत्न-पात्र तथा पवित्र पुस्तक के प्रतीक उत्कीर्ण हैं (चित्र ४०)।[5] एक अन्य आयाग-

---

१. द्रष्टव्य एन्शियण्ट इण्डिया, सं० १, अनुकृति पद्मिनीसेन गुप्ता, इवरीडे लाइफ इन एन्शियण्ट इण्डिया, लन्दन, १९५१, पृ० १७३।
२. पद्मिनीसेन गुप्ता, उपरोक्त, पृ० १७३।
३. कृष्णदत्त बाजपेयी, ऐतिहासिक नगर तुमैन, सागर, १९७४, पृ० ५।
४. द्रष्टव्य एस० के० सरस्वती, उपरोक्त, फलक १३, चित्र ५९; वासुदेव शरण अग्रवाल, दि हेरिटेज ऑव इण्डियन आर्ट, नई दिल्ली १९६४, फलक २३।
५. स्मिथ, उपरोक्त, फलक ११ (राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जे।२५२)।



३८



३९

चित्र सं० ३८—३९

पट्ट पर मत्स्याकृति विशाल स्वस्तिक के चारों घेरे में एक-एक मांगलिक चिह्न अंकित किया गया है। जिन चार चिह्नों को अंकित किया गया है वे हैं स्वस्तिक, मीन-मिथुन, पीठासीन पुस्तक और श्रीवत्स (चित्र ४१)।[१] एक आयागपट्ट का आभ्यन्तर चक्र के चारों ओर चलमुद्रा में उत्कीर्ण नारियों से अलंकृत है। इसके चारों किनारों के कोनों तथा मध्य में एक-एक प्रतीक उत्कीर्ण है। एक किनारे के मध्य में श्रीवत्स की स्थिति है।[२]

जैन आयागपट्टों के सदृश ही बौद्ध अनुयायी भी उत्कीर्ण प्रस्तरों की पूजा करते थे जिन पर श्रीवत्स, त्रिरत्न, चक्र आदि प्रतीकों का अंकन किया जाता था। ऐसे कुछ उदाहरण सारनाथ से मिले प्रस्तर-खण्डों पर पाए गए हैं।[३]

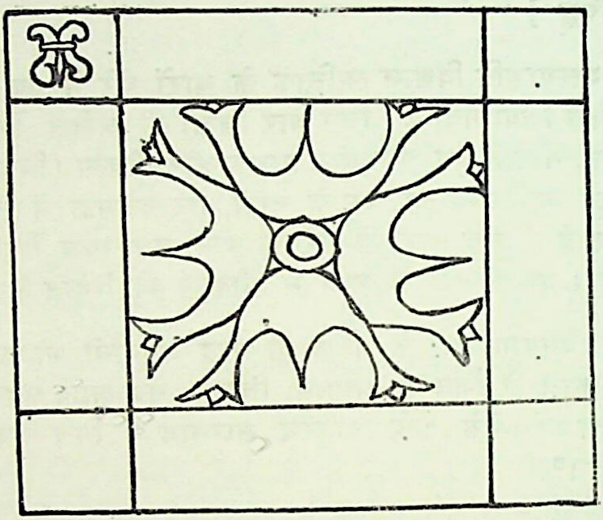
छत्र

ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में बोधिसत्त्वों की विशाल आदमकद प्रतिमाओं के ऊपर गोल अथवा चौकोर छत्रों पर भी इन मांगलिक चिह्नों को उत्कीर्ण किया गया था। इस प्रकार के दो उदाहरण मथुरा से प्राप्त हुए हैं। प्रथम शती ईसवी का ऐसा ही एक गोल छत्र बोधिसत्त्व की प्रतिमा समेत सारनाथ संग्रहालय में प्रदर्शित है। 'चक्र के भीतर चक्र' जैसी डिज़ाइन वाले इस छत्र का वाह्य चक्र कमल-दलों से तथा उसके भीतर वाला चक्र हंस-पक्ति से सजा है। इन दोनों चक्रों के बीच वाले चक्र-फलक में समान दूरी पर आठ भिन्न-भिन्न मांगलिक चिह्न तथा एक ही प्रकार के चार अन्य प्रतीक अंकित हैं। घड़ी के अंकों के समान स्थिति वाले ये प्रतीक क्रमशः मीन-मिथुन, नन्दिपाद, अज्ञात प्रतीक, पुष्प-पात्र, मोदक-पात्र, स्वस्तिक, वही अज्ञात प्रतीक, शंख, टूटा स्थान, वही अज्ञात प्रतीक, कलश तथा श्रीवत्स हैं (चित्र ४२)।[४]

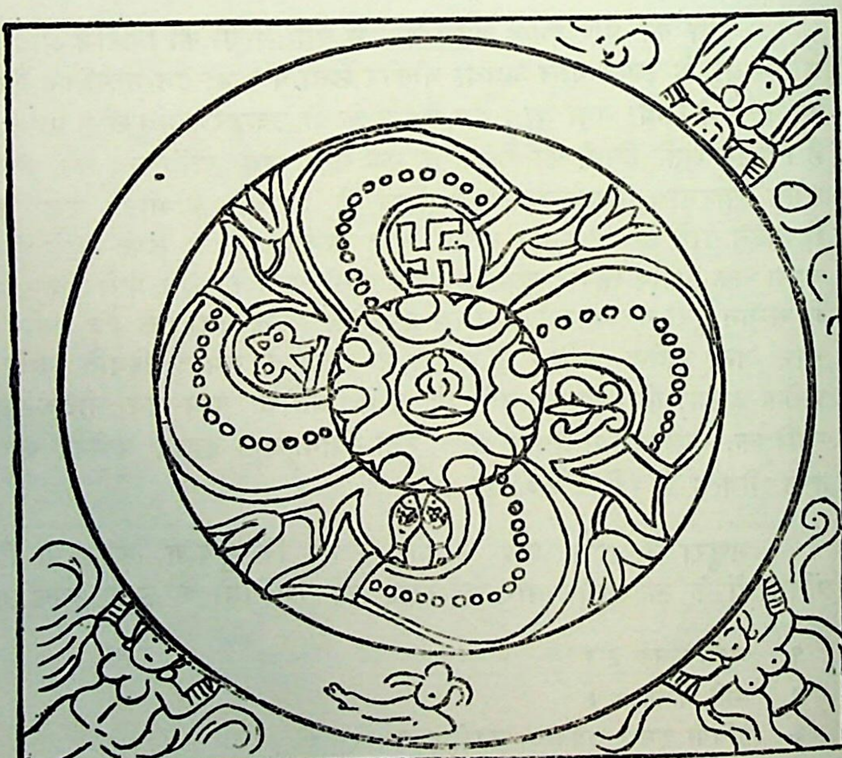
मथुरा से प्राप्त छत्र चौकोर हैं जो कि कुषाण काल में बौद्ध प्रतिमाओं के ऊपर तीन ओर से उठाई गई भित्तियों के ऊपर रक्खे गये

---

१. वही, फलक ९।
२. वही, फलक ८।
३. पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० २८।
४. द्रष्टव्य वासुदेव शरण अग्रवाल, स्टडीज़ इन इण्डियन आर्ट, चित्र ३।



४०



४१

चित्र सं० ४०—४१

छत्र (अथवा छत) हैं। इनमें एक छत्र के एक किनारे पर क्रमशः शंख, मोदक-पात्र, कलश, श्रीवत्स, पुष्प-पात्र, स्वस्तिक, मीन-मिथुन तथा नन्दिपद अंकित हैं (चित्र ४३)।[1]

स्तम्भ-शीर्ष

मौर्य-शुंग युग के कतिपय स्तम्भ-शीर्ष कौशाम्बी के निकट स्थित मैनहाई नामक गाँव से मिले हैं जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास के विभागीय संग्रहालय में प्रदर्शित हैं। इनमें ३ फिट ६ इञ्च व्यास वाले एक शीर्ष के ऊपरी घेरे में चारों ओर १० आकृतियाँ बनी हैं। इनमें ४ सिंह, १ दोहरे कूबड़ वाला ऊँट, ४ पत्रलताएँ तथा १ श्रीवत्स की आकृति है (चित्र ४४)।[2] ये सभी आकृतियाँ एवं प्रतीक साँची के उत्कीर्ण-शिल्प जैसे हैं।

कांस्य-उपकरण

ब्रह्मगिरि से द्वितीय-तृतीय शती ईसवी के सातवाहन काल के जो पुरावशेष प्राप्त हुए हैं उनमें काँसे का एक चौकोर फलक भी है जिसके भीतर श्रीवत्स का आकर्षक रूप काट कर बनाया गया है। एक इञ्च वर्ग के इस फलक का ठीक-ठीक उपयोग तो अज्ञात है, किन्तु मध्यमणि के रूप में इसका उपयोग निश्चित रूप से असंभव भी नहीं कहा जा सकता है। यह फलक इस समय कोल्हापुर-संग्रहालय में है (चित्र ४५)।[3]

इलाहाबाद के आस-पास से मिली श्रीवत्सधारिणी मृण्मुद्राओं के ही समान कौशाम्बी से आर्यदत्त की द्वितीय-तृतीय शती ईसवी की एक अण्डाकार ताम्रमुद्रा मिली है जिसके ऊपरी भाग पर श्रीवत्स की आकृति तथा निचले भाग पर आर्यदत्त का नाम उत्कीर्ण है।[4]

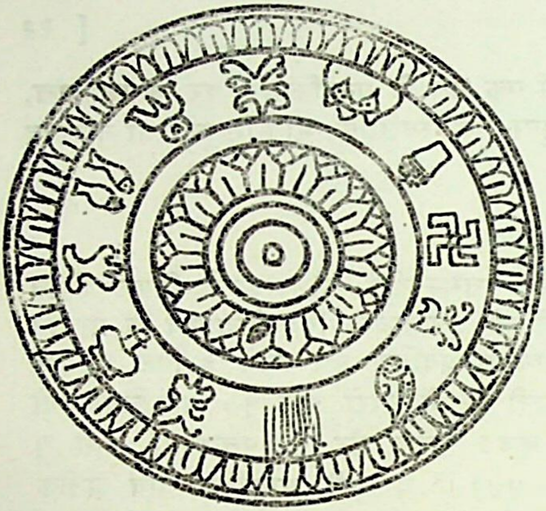
---

१. वही, चित्र ६।

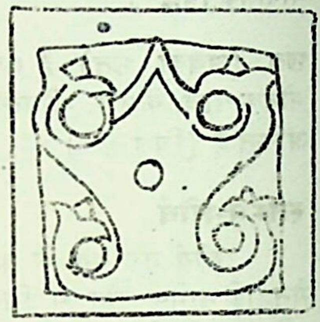
२. द्रष्टव्य गोवर्द्धनराय शर्मा, रेह इन्स्क्रिप्शन ऑव मेनाण्डर ऐण्ड दि इण्डो-ग्रीक इनवेज़न ऑव दि गंगा वैली, इलाहाबाद १९८०, फलक १०।

३. द्रष्टव्य ललित कला, सं० ७ (१९६०), फलक २०।३५।

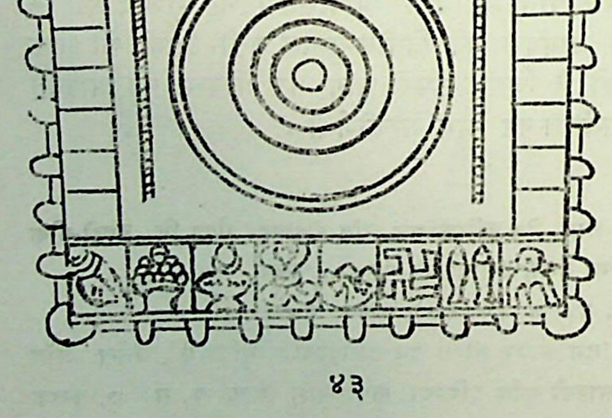
४. ऋषिराज त्रिपाठी, 'सम कापर सील्स इन इलाहाबाद म्यूजियम', जर्नल ऑव दि न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया, खण्ड २७, भाग १, सं० ७, फलक १२।७, पृ० २९।



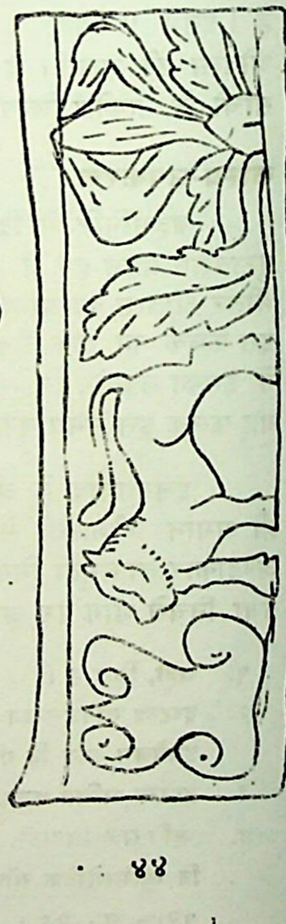
४२



४५



४३



४४

चित्र सं० ४२—४५

दन्त-कलाकृतियाँ

हाथी दाँत से बनाई गई ढेरों कलाकृतियाँ बेग्राम (अफगानिस्तान) से मिली हैं। शैली के आधार पर विद्वान् उन्हें प्रथम-द्वितीय शती ईसवी की मानते हैं। बेग्राम-कला पर साँची-कला की छाप स्पष्ट है। बेग्राम से मिली इन दन्त-कलाकृतियों पर भी श्रीवत्स के अंकन उपलब्ध हुए हैं जिन्हें तोरणों पर अन्य प्रतीकों के साथ देखा जा सकता है (चित्र ८२, ८३)।[1]

सिक्के

श्रीवत्स का मांगलिक स्वरूप प्राचीन भारतीय सिक्कों पर भी पाया गया है। भारतीय सिक्कों पर स्वस्तिक, त्रिरत्न, नन्दिपद, चक्र, वृक्ष, चैत्यगिरि मीन-मिथुन तथा और भी अनेक मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण किए गए हैं। सिक्कों पर श्रीवत्स को अंकित करने की परम्परा लगभग छठी शती ईसा पूर्व से प्रारम्भ हुई थी और लगभग तीसरी-चौथी शती ईसवी तक निरन्तर प्रचलित रही।

श्रीवत्स, जैसा कि शब्द से ही प्रकट है, श्रीलक्ष्मी का प्रतीक है। श्रीलक्ष्मी को **मार्कण्डेय पुराण** में पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री बताया गया है।[2] पद्मिनी विद्या की आधार अष्टनिधियाँ मानी गई है। इस प्रकार श्रीलक्ष्मी का एक स्वरूप निधि-लक्ष्मी अथवा धन-लक्ष्मी का भी है। उसे निधिनाथा, निधिप्रदा,[3] धनदा, धनेश्वरी[4] आदि नामों से अभिहित भी किया गया है। वैसे भी श्रीलक्ष्मी को सुख-समृद्धि की देवी माना जाता है। इस सन्दर्भ में सिक्कों पर श्रीलक्ष्मी को तथा उनके प्रतीक श्रीवत्स को अंकित किया जाना स्वाभाविक और तर्कसंगत जान पड़ता है।

भारतीय सिक्कों का इतिहास आहत (पंचमार्क) सिक्कों से प्रारम्भ होता है और तभी से सिक्कों पर श्रीवत्स प्रतीक के अंकन की परम्परा भी

---

१. द्रष्टव्य विनोद प्रकाश द्विवेदी, **इण्डियन आइवरीज़,** दिल्ली १९७६, फलक ६३; पृथिवी कुमार अग्रवाल, **उपरोक्त,** फलक १८, २०, ७७।

२. **मार्कण्डेय पुराण,** निधि-निर्णय नामक ६८ वाँ अध्याय, श्लोक ४—"पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मी तस्याधिदेवता"।

३. **त्रिपुरारहस्य,** माहात्म्य खण्ड, १२।४।

४. **सोभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्,** १।३८।

पाई जाती है। रजत पंचमार्क सिक्कों पर नाना प्रकार के चिह्न, आकृतियाँ और प्रतीक पाए गए हैं। इनमें श्रीवत्स भी है (चित्र ४६)।[१] श्रीवत्स प्रतीक वाले रजत पंचमार्क सिक्के चन्द्रकेतुगढ़ (पश्चिमी बंगाल, चित्र ४७[२] तथा चन्द्रवल्ली (कर्नाटक)[३] से तथा एक ताम्र-पंचमार्क सिक्का पौनी (महाराष्ट्र)[४] से उपलब्ध हुआ है। पौनी के उत्खनक नागपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास के अध्यक्ष डॉ० अजयमित्र शास्त्री ने इस सिक्के पर पाँच प्रतीक पहचाने हैं।[५] यद्यपि उन्होंने प्रत्येक प्रतीक का स्थान सिक्के में निर्दिष्ट नहीं किया है, फिर भी संभवतः बाँई ओर नीचे कोने के प्रतीक को उन्होंने 'घनी पत्तियों वाला वृक्ष' कहा है।[६] परन्तु यह प्रतीक वस्तुतः श्रीवत्स का है जिसके पाँचों उभारों को उन्होंने पत्तियाँ समझा है (चित्र ४८)। रजत पंचमार्क सिक्कों पर श्रीवत्स के अंकन का उल्लेख डॉ० पृथिवी कुमार अग्रवाल ने भी किया है, उन्होंने उनके चित्र भी दिए हैं; किन्तु उन्होंने किसी सन्दर्भ की सूचना नहीं दी है।[७]

चैत्यगिरि तथा नन्दिपद के साथ श्रीवत्स प्रतीक तक्षशिला के कतिपय सिक्कों पर भी पाया गया है जिन्हें द्वितीय शती ईसा पूर्व का

---

१. द्रष्टव्य चितरंजन राय चौधरी, ए कैटेलॉग ऑव अर्ली इण्डियन क्वाइन्स इन दि आशुतोष म्यूजियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता १९६२, फलक १।८।

२. आशुतोष संग्रहालय, कलकत्ता की एक प्रदर्शन-पेटिका में प्रदर्शित एक सिक्के को लेखक ने स्वयं २३।१२।१९७४ को देखा था। अन्य सिक्कों के लिए देखिए चितरंजन राय चौधुरी, उपरोक्त, फलक १।८; पंचमार्क सिल्वर क्वाइन्स सं० ९४-१०६ एवं पंचमार्क बिलन क्वाइन्स, सं० ७-२०।

३. ह्वीलर, 'ब्रह्मगिरि ऐण्ड चन्द्रवल्ली १९४७ : मेगालिथिक ऐण्ड अदर कल्चर्स इन मैसूर स्टेट', एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ४, पृ० २९०, चित्र ५०।८।

४. जे० एन० एस० आई०, खण्ड, ३६, फलक ३।१।

५ 'सम मोर इण्टरेस्टिंग क्वाइन्स फ्राम पौनी', जे० एन० एस० आई०, खण्ड ३६, पृ० २।

६. वही।

७. पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, चित्र २७-२९, पृ० २१।

माना जाता है (चित्र ४६)।[१] लगभग इसी युग के विशाखदेव के सिक्कों पर भी अन्य प्रतीकों के साथ श्रीवत्स का अंकन है।[२] अयोध्या के ही राजा कुमुदसेन के एक ताम्र-सिक्के पर श्रीवत्स एवं नन्दिपद का सम्मिलित स्वरूप पाया गया है (चित्र ५०)।[३]

प्रथम शती ईसा पूर्व में उत्तरी तथा दक्षिणी भारत पर शासन करने वाले मित्र, औदुम्बर, कुणिन्द तथा सातवाहन वंश के राजाओं के सिक्कों पर भी श्रीवत्स का प्रतीक उत्कीर्ण हुआ है। पंचाल के शासक मित्र राजाओं के सिक्कों के अग्र भाग पर तीन प्रतीक एक पंक्ति में पाए गए हैं—बीच में श्रीवत्स, बाँई ओर वेदिका में वृक्ष और दाँई ओर एक अपरिचित प्रतीक (चित्र ५१)।[४] इन प्रतीकों को 'पंचाल-प्रतीक' कहा गया है जिन्हें वरुणमित्र, सूर्यमित्र, जयमित्र, फाल्गुणिमित्र, अग्निमित्र, भानुमित्र, भूमिमित्र, ध्रुवमित्र, वृहस्पतिमित्र, इन्द्रमित्र, विष्णुमित्र आदि के सिक्कों पर समान रूप से अंकित किया गया है।[५] इन सिक्कों पर बीच में स्थित श्रीवत्स के प्रतीक में अगल-बगल की रेखाएँ गोलाई से अन्दर की ओर मुड़ी हुई हैं। इस आधार पर कतिपय विद्वानों ने इस प्रतीक की पहचान आमने-सामने फन उठाए हुए दो नागों से की है।[६] फाल्गुणिमित्र तथा भद्रघोष के सिक्कों के पृष्ठ भाग पर भी इस प्रतीक का सुन्दर अंकन है जो कमल पर खड़ी श्रीलक्ष्मी के दाँई ओर स्थित है (चित्र ५२)। यहाँ पर श्रीलक्ष्मी के संसर्ग में श्रीवत्स प्रतीक का पाया जाना महत्वपूर्ण है।

---

१. द्र० एलन, ब्रिटिश म्यूज़ियम कैटेलॉग, एन्शियण्ट इण्डिया, फलक ३४।८, १०; चितरंजन चौधुरी, उपरोक्त, फलक १०।३।

२. एलन, उपरोक्त, पृ० १३१।

३. द्र० पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ६३।

४. द्र० एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ६, चित्र ६।५, पृ० १३६; सी० जे० ब्राउन, दि क्वाइन्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता १६२२, फलक १।४।

५. द्र० एलन, उपरोक्त, फलक २७।८, १० (सूर्यमित्र); ११—१४ (फाल्गुणिमित्र); फलक २८।४-७ (भूमिमित्र), ८-१२ (अग्निमित्र), १८-२१ (जय मित्र), आदि।

६. वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, पटना १६७१, पृ० ६१; दिनेश चन्द्र सरकार, स्टडीज़ इन इण्डियन क्वाइन्स, दिल्ली १६६८, पृ० ३५६, फलक ४।१२ का विवरण।

कुछ दिन पहले नीदरलैण्ड निवासी श्री जे० लिंजन के निजी संग्रह में दो ऐसे औदुम्बर सिक्कों का पता चला है जिन पर श्रीवत्स प्रतीक का रूपांकन है। इन सिक्कों को डॉ० के० के० दासगुप्ता ने 'वृषभ-हस्ति' प्रकार का माना है क्योंकि इनके एक ओर वृषभ तथा दूसरी ओर हाथी की आकृति है।[1] इन गोल रजत-सिक्कों पर पाए गए ब्राह्मी अक्षरों के आधार पर इनका निर्माण काल प्रथम शती ईसा पूर्व ठहराया गया है।[2] इन सिक्कों के अग्र भाग पर वृषभ और उसके ऊपर स्वस्तिक का प्रतीक अंकित है। पृष्ठभाग पर बाँई ओर को चलता हुआ हस्ति है जिसकी सूँड़ के नीचे श्रीवत्स का प्रतीक उत्कीर्ण है (चित्र, ५३, ५४)।[3] औदुम्बर-नरेश शैव थे, इसलिए दासगुप्ता हस्ति की सूँड़ के नीचे के प्रतीक को त्रिशूल मानते हैं, जब कि एक के ऊपर एक रक्खे ये दो त्रिशूल वस्तुतः श्रीवत्स की आकृति बनाते हैं। श्रीवत्स एक मांगलिक प्रतीक था जो सभी धर्मों और सम्प्रदायों में समान रूप से समादृत था। हस्ति भी शैव सम्प्रदाय से मेल नहीं खाता है। किन्तु उसमें राजत्व का अभिप्राय तो सन्निहित था ही। श्रीवत्स लक्ष्मी का प्रतीक था और गज से लक्ष्मी का सम्बन्ध तो लोक-विश्रुत है। तभी वे गजलक्ष्मी कहलाती हैं। अस्तु, औदुम्बर-सिक्कों पर हस्ति के साथ श्रीवत्स प्रतीक का पाया जाना एक सारगर्भित तथ्य है। वस्तुतः ये प्रतीक राज्य की अखण्डता एवं सम्पन्नता के प्रतीक थे।

कुणिन्द-सिक्कों पर भी श्रीवत्स का अंकन पाया गया है। अमोघभूति के कुछ ताम्र-सिक्कों तथा रजत-सिक्कों के मुख भाग पर हरिण, उसके सम्मुख खड़ी एक नारी (लक्ष्मी) तथा हरिण के दोनों सींगों के बीच श्रीवत्स की उपस्थिति है (चित्र ५५)।[4] इन सिक्कों पर प्रतीक का स्वरूप कुछ भिन्न है जिसे विद्वानों ने 'नागमुद्रा' कहा है। इन सिक्कों पर भी लक्ष्मी एवं श्रीवत्स प्रतीक का साथ-साथ पाया जाना ध्यान देने योग्य है।

---

१. जे० एन० एस० आई०, खण्ड ३६, पृ० ५४-५६, फलक ४।१, २।
२. के० के० दासगुप्ता, 'रेयर ट्राइबल क्वाइन्स ऑव दि लिंजेन कलेक्शन', जे० एन० एस० आई, खण्ड ३६, पृ० ५४।
३. द्रष्टव्य, उपरोक्त, फलक ४।१, २।
४. द्र० एलन, उपरोक्त, फलक २२।१-१६; फलक २३।१-३; दिनेशचन्द्र सरकार, उपरोक्त, फलक ३।१२, १३।

१६४७ ईसवी में कर्नाटक के चन्द्रवल्ली नामक स्थान पर किए गए उत्खनन से प्रथम शती ईसा पूर्व के कतिपय सातवाहन नरेशों के तथा उनके सामन्त शासकों के सिक्के मिले थे। इनमें कुछ सिक्कों पर एक ओर गोल घेरे में श्रीवत्स प्रतीक का एकाकी अंकन है (चित्र ५६, ५७) एवं सिक्कों के दूसरी ओर चैत्यगिरि, नन्दिपद, स्वस्तिक, मीन-मिथुन तथा वैजयन्ती आदि चिह्नों के साथ भी श्रीवत्स के छोटे स्वरूप का अंकन है (चित्र ५८, ५६)।[१] सातवाहन नरेशों के कुछ सिक्के नेवासा से मिले हैं जिनके पृष्ठ भाग पर वेदिका में वृक्ष तथा नन्दिपद के साथ श्रीवत्स प्रतीक का सुन्दर अंकन है (चित्र ६०)।[२] सातवाहन कालीन कुछ सिक्कों पर अश्व तथा हस्ति के ऊपर भी श्रीवत्स का लघु रूप पाया गया है जिसकी आकृति एक के ऊपर एक रक्खे हुए दो त्रिरत्नों जैसी है। हैदराबाद से प्राप्त प्रकाशशिवसेवक तथा कोण्डापुर और पणिगिरि से प्राप्त शातकर्णि के ऐसे सिक्कों को महामहोपाध्याय वी० वी० मिराशी ने प्रकाशित किया है (चित्र ६१)।[३] हाथी की पीठ के ऊपर ऐसी ही आकृति वाला श्रीवत्स कौशिकपुत्र शातकर्णि के एक गोल ताँबे के सिक्के पर भी पाया गया है (चित्र ६२)।[४] एक के ऊपर एक रक्खे हुए दो त्रिरत्नों की आकृति के कारण श्री मिराशी ने इसे ब्राह्मी लिपि का 'य्य' अक्षर समझा है[५] जिसकी किसी सार्थकता की ओर उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिलाया है।

मथुरा क्षेत्र में शासन करने वाले पुरुषदत्त, रामदत्त, गोमित्र द्वितीय तथा शेषदत्त के सिक्कों पर भी श्रीवत्स उत्कीर्ण किया गया था। ऐसे पाँच सिक्कों का उल्लेख एलन ने बृटिश संग्रहालय में संग्रहीत भारतीय सिक्कों

---

१. ह्वीलर, उपरोक्त, फलक १२८।२५, ३३, ३५; फलक १२७।१५, २०; रैप्सन, **बृटिश म्यूज़ियम कैटेलॉग, दि आन्ध्र डाइनेस्टी ऐण्ड वेस्टर्न क्षत्रपज़**, फलक ८।२०७, २०८ एवं २३६।

२. हँसमुख धीरज सांकलिया, **फ़्राम हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री ऐट नेवासा**, पूना १६६०, चित्र ७४।१, ७७।१।

३. जे० एन० एस० आई०, खण्ड ८, भाग २, पृ० १०७-०८, फलक ७।१-४।

४. वही, पृ० १०७-०८।

५. वही, फलक ८ ए चित्र १।



४६



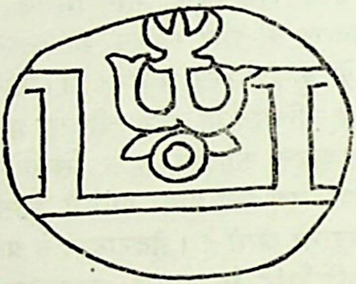
४७



४८



४९



५०



५१



५२.



५३



५४



५५



५६



५७



५८



५९



६०

चित्र सं० ४६—६०

के सूचीपत्र में किया है।[१] इन सभी सिक्कों के मध्य में एक खड़ी नारी-मूर्ति है जिसे एलन ने लक्ष्मी कहा है। लक्ष्मी के बाएँ पार्श्व में श्रीवत्स प्रतीक का अङ्कन है (चित्र ६३)। रामदत्त के एक सिक्के के पृष्ठ भाग पर भी श्रीवत्स का प्रतीकांकन है (चित्र ६४)।[२] एलन ने इन सिक्कों का समय ईसा पूर्व २००-५० वर्ष माना है।

अभी हाल ही में संकिशा (फर्रुखाबाद) से प्राप्त मथुरा के ऐसे दो सिक्कों को डॉ० किरण कुमार थपल्याल ने प्रकाशित किया है।[३] एक सिक्के पर प्रथम शती ईसवी के ब्राह्मी अक्षरों में एक लेख है **'राज्ञो शेषदत्तस'** तथा देवी के पार्श्व में अर्द्धचन्द्र, नन्दिपद तथा श्रीवत्स के प्रतीक हैं (चित्र ६५)।

मथुरा के इन सिक्कों पर श्रीवत्स के चार स्वरूप दिखाई पड़ते हैं जो उनके विस्तृत समय तक प्रचलित रहने के परिचायक हैं। ये स्वरूप हैं मानवाकृति, पाँच पत्तियों वाला पादप, एक दूसरे पर रक्खे दो त्रिरत्न तथा मुँह में मुँह जोड़कर उठे दो नाग।

अल्तेकर तथा डिस्केलकर द्वारा प्रकाश में लाए जाने वाले उज्जैन सिक्कों के कसरवाड संग्रह में तीन ऐसे चौकोर ताँबे के सिक्के भी सम्मिलित हैं जिन पर श्रीवत्स का शुंगयुगीन रूप अङ्कित हुआ है। इनमें एक सिक्के के बीच में श्रीवत्स है, बाँई ओर वेदिका-मण्डित वृक्ष तथा दाएँ पार्श्व में एक खड़ी मानवाकृति है (चित्र ६६)[४]; दूसरे सिक्के पर श्रीवत्स तथा वेदिका-मण्डित वृक्ष है (चित्र ६७)[५] तथा तीसरे सिक्के पर एक अश्व, अश्व के सम्मुख एक खड़ी मानवाकृति तथा उसके ऊपरी भाग में श्रीवत्स का प्रतीक है (चित्र ६८)।[६] उपरोक्त विद्वानों ने इन सिक्कों के

---

१. एलन, उपरोक्त, फलक १४।१, ५।
२ वही, फलक १४।१०।
३. जे० एन० एस० आई, खण्ड ३६, पृ० ८-१८, फलक १।५।
४. द्र० जे० एन० एस० आई, खण्ड ८, पृ० २०३, फलक ६।१०।
५. वही, फलक ६।११।
६. वही, फलक ६।१२।

श्रीवत्स प्रतीक को मिराशी के ही समान मौर्ययुगीन ब्राह्मी अक्षर 'यस्' अथवा 'य्य' माना है।[1]

औदुम्बरों की पूर्वी सीमा से लगे काँगड़ा जिले की कुल्लू घाटी में प्रथम या द्वितीय शताब्दी में शासन करने वाले कुलूत राजाओं ने भी अपने सिक्कों पर श्रीवत्स का मांगलिक चिह्न अङ्कित करवाया था। इस वंश के शासक वीरयश के एक रजत सिक्के पर बीच में श्रीपर्वत है, उसके ऊपर नन्दिपद, बाँई ओर स्वस्तिक तथा दाँई ओर श्रीवत्स है (चित्र ६९)।[2] श्रीवत्स का यह स्वरूप एक दण्ड के अगल-बगल खड़े तथा एक दूसरे की ओर फन उठाए दो सर्पों के समान है जैसा कि मथुरा के गोमित्र द्वितीय के सिक्कों पर पाया गया है।

यौधेयों के सिक्कों पर भी श्रीवत्स का चिह्न है[3] जहाँ इसके तीन रूप पाए गए हैं। पहला, दो त्रिरत्नों का संयुक्त स्वरूप है जो किसी दण्ड पर एक के ऊपर एक रखकर बनाया गया है। इसमें नीचे दण्ड की रेखा स्पष्ट है। दूसरा स्वरूप दो नागों का है जो एक-दूसरे के फनों को जोड़ कर बना है, और तीसरा स्वरूप इन नागों के मध्य खड़े एक दण्ड के जुड़ने से बनता है (चित्र ७०)। इन कुलूत एवं यौधेय सिक्कों का समय प्रथम तथा तृतीय शती ईसवी के बीच ठहराया गया है।[4]

श्रीवत्स प्रतीक का अङ्कन सुदूर दक्षिण के प्रारम्भिक पाण्ड्य सिक्कों पर भी पाया गया है। तृतीय एवं चतुर्थ ईसवी के हाथी तथा अश्व प्रकार के कुछ चौकोर ताम्र-सिक्कों पर श्रीवृक्ष, नन्दिपद, कलश, चन्द्र, दर्पण, चक्र तथा मीन-मिथुन आदि अन्य मांगलिक चिह्नों के संसर्ग में श्रीवत्स को

---

१. वही, पृ० २०३।

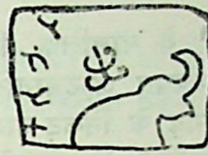
२. द्र० एलन, उपरोक्त, फलक १४।४; रिज़ डेविड्स, बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता १९५७, फलक ९।१०; दिनेशचन्द्र सरकार, उपरोक्त, फलक ३।११।

३. द्र० एलन, उपरोक्त, फलक ३९।५, पृ० २६६; के० के० दासगुप्ता, ए ट्राइबल हिस्ट्री ऑव एन्शियण्ट इण्डिया : ए न्यूमिस्मेटिक अप्रोच, कलकत्ता १९७४, पृ० २०१।

४. रैप्सन (सं०), दि केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, खण्ड १, दिल्ली १९५५, पृ० ४७६।



६१



६२



६३



६४



६५



६६



६७



६८



६९



७०



७१

चित्र सं० ६१—७१

भी स्थान दिया गया था।[1] ये मांगलिक चिह्न सात अथवा आठ की संख्या में होने के कारण निश्चयत: अष्टमांगलिक चिह्न थे। मथुरा के आयागपट्टों, छल्लों तथा जूनागढ़ के निकट बावा प्यारा मठ की एक गुफा (सं० के) के समान अष्टमांगलिक चिह्नों को एक साथ एक पंक्ति में अङ्कित करने वाले संभवत: एकमात्र सिक्के पाण्ड्यों के हैं। जैन धर्म से प्रभावित होने के कारण ही पाण्ड्य-सिक्कों पर अष्टमांगलिक चिह्नों को उत्कीर्ण किया गया है। इस तथ्य के प्रमाण पाण्ड्य क्षेत्र से प्राप्त प्राचीन ब्राह्मी अभिलेख प्रस्तुत करते हैं जिनमें उस काल में वहाँ जैन श्रमणों एवं उनके अनुयाइयों की उपस्थिति दर्शायी गई है।[2]

सिक्कों पर श्रीवत्स-प्रतीकांकन की यह भारतीय परम्परा देश की सीमाओं के बाहर भी जा पहुँची थी। दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का विस्तार सर्वविदित है। कम्बोडिया में मीकाँग नदी के डेलटा में हुए पुरातात्त्विक उत्खनन से प्राचीन फूनान राज्य (चतुर्थ-छठीं शती ई०) के कुछ सिक्के ऐसे पाए गए हैं जिन पर श्रीवत्स का अङ्कन है। इन सिक्कों में एक ओर शङ्ख है और दूसरी ओर श्रीवत्स का प्रतीक है।[3] लगभग ऐसे ही सिक्के वर्मा के अरकान प्रदेश से भी मिले हैं जो पाँचवीं-ग्यारहवीं शती ई० में शासन करने वाले चन्द्रवंशी राजाओं के बताए जाते हैं (चित्र ७१)।[4] चूँकि वर्मा तथा कम्बोडिया में भारतीय राजवंशों ने ही अपने-अपने राज्य स्थापित किए थे, अतएव श्रीवत्स की परम्परा उन्हीं के द्वारा वहाँ ले जाई गई थी।

इस प्रकार लगभग एक-डेढ़ सहस्र वर्षों के सुदीर्घ समय में भारतीय सिक्कों पर श्रीवत्स प्रतीक के मांगलिक चिह्न को विविध रूपों में सुप्रतिष्ठित स्थान मिलता रहा। उत्तरी भारत से लेकर दक्षिणी भारत तक तथा

---

१. अमलानन्द घोष (सं०), **जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेचर,** खण्ड ३, पाण्ड्य सिक्के, सं० ४ एवं ६, पृ० ४६१-६२, फलक ३०५।४; ३०६।१।

२. वही, पृ० ४५७।

३. मैलरेट, **एल आर्कियोलॉजी दु डेल्टा दु मेकांग,** पेरिस १९६०, खण्ड २, फलक ४४, द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० ५०।

४. नीहार रंजन रे, **ब्रह्मेनिकल गॉड्स इन बर्मा,** कलकत्ता १९३२, फलक १४।१९ ए और बी, द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० ४८।

विदेशों में पाए गए भारतीय सिक्कों पर श्रीवत्स के अङ्कन से इस प्रतीक की व्यापक लोकप्रियता का बोध कितना सहज है।

अभिलेख

ई० पू० द्वितीय शती से लेकर ईसा की प्रथम शती तक के कतिपय ऐसे भारतीय अभिलेख पाए गए हैं जिनमें प्रारम्भ में श्रीवत्स के प्रतीक उत्कीर्ण हैं। भाजा, जुन्नार तथा कार्ले के गुहाभिलेखों के प्रारम्भ में श्रीवत्स का प्रतीक पाया गया है।[1] श्रीवत्स तथा नन्दिपद का एक सम्मिलित स्वरूप जुन्नार के एक गुहाभिलेख में द्रष्टव्य है।[2] छत्र से अलंकृत श्रीवत्स का एक प्रतीक अमरावती के एक स्तूप-अभिलेख के अन्त में पाया गया है।[3]

श्रीवत्स का एक चतुर्दल स्वरूप विंध्यशक्ति द्वितीय के वासिम ताम्रपत्र अभिलेख के अन्त में प्राप्त हुआ है, जो आगे चलकर वक्ष-लक्षण के रूप में अधिक लोकप्रिय हो गया था।[4]

श्रीवत्स का एक अनूठा प्रयोग खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख में प्राप्त हुआ है जहाँ अभिलेख के प्रारम्भ में बाईं ओर पहली से लेकर पाँचवीं पंक्तियों की सीध में ऊपर श्रीवत्स तथा उसके नीचे स्वस्तिक का एक-एक प्रतीक उत्कीर्ण है (चित्र १३२)।[5] यहाँ पर श्रीवत्स का स्वरूप

---

१. जेम्स बर्जेस एवं भगवानलाल इन्द्रजी, इन्स्क्रिप्शन्स फ्राम दि केव-टेम्पुल्स ऑव वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई १८८१, पृष्ठ २३, २८ एवं ४२ के सम्मुख लगे चित्र, द्रष्टव्य पृथिवीकुमार अग्रवाल, उपरोक्त, रेखा चित्र १५-१७।

२. वही, पृ० ३७, फलक ८५।

३. शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्न्मेण्ट म्यूजियम, मद्रास १९४२, पृ० २७७, अभिलेख सं० २५।

४. द्रष्टव्य कनिंघम, कार्पस इन्स्क्रिप्शन इण्डिकेरम, खण्ड १, फलक १७; शशिकान्त, दि हाथीगुम्फा इन्स्क्रिप्शन ऑव खारवेल ऐण्ड दि भाब्रू एडिक्ट ऑव अशोक, दिल्ली १९७१, फलक २।

५. द्रष्टव्य, दिनेश चन्द्र सरकार, सेलेक्ट इन्स्क्रिप्शन्स, खण्ड १, बुक ३, अभिलेख सं० ५९, फलक ५१, चतुर्थ दृश्य।

लगभग वैसा ही है जैसा उदयगिरि की रानीगुम्फा के तोरणद्वार तथा अमरावती की चैत्याकार खिड़कियों के ऊपर पाया गया है।

श्रीवत्स और स्वस्तिक प्रतीकों का इसी प्रकार का एक साथ अङ्कन मध्य प्रदेश के गुना जिले में स्थित चन्देरी शिलालेखों के ऊपर पाया गया है।[1] इन दोनों प्रतीकों का एक साथ अङ्कन यद्यपि मथुरा से मिले एक प्रस्तर-अभिलेख में भी हुआ है, किन्तु वहाँ श्रीवत्स अभिलेख के प्रारम्भ में और स्वस्तिक अन्त में उत्कीर्ण किया गया है (चित्र १४२)।[2] मथुरा के इस अभिलेख के प्रारम्भिक प्रतीक की पहचान यद्यपि मथुरा-संग्रहालय के तत्कालीन निदेशक श्री रमेश चन्द्र शर्मा ने उच्च ग्रीवा एवं वहिर्गत आधार वाले मंगल-कलश से की है,[3] किन्तु वस्तुतः वह प्रतीक कलश नहीं श्रीवत्स है। मथुरा से ही मिले शक-क्षत्रप शोडाष के एक अभिलेख में श्रीवत्स प्रारम्भ में और संभवतः नन्दी अन्त में उत्कीर्ण है (चित्र १४३)।[4] मथुरा-अभिलेखों में उत्कीर्ण श्रीवत्स की आकृतियाँ अपेक्षाकृत अलंकृत हैं और वहीं से मिले जैन आयागपट्टों पर उत्कीर्ण श्रीवत्स प्रतीक से लगभग मिलती-जुलती हैं। इन अङ्कनों में प्रतीक के ऊपर एक त्रिकोण जैसा शीर्ष अथवा छत्र लगा दिया गया है। शोडाष वाले अभिलेख में श्रीवत्स की निचली गोलाइयों से निकलते हुए मत्स्याकृति वाले पंख दिखाई देते हैं। यह कुषाण कालीन मथुरा-कला की विशेषता है जो संभवतः विदेशी प्रभाव की देन है।

समूचे तमिलनाडु में ऐसे कई प्राकृतिक शैलगृह मिले हैं जिनमें तृतीय-द्वितीय शती ई० पू० के अभिलेख पाए गए हैं। इन अभिलेखों में प्रायः जैन गुफाओं के दान का उल्लेख मिलता है। करूर के निकट एक

---

१. इण्डियन आर्कियोलॉजी १९७१-७२ ए रिव्यू, मध्यप्रदेश सं० ६, पृ० ५३।

२. रमेशचन्द्रशर्मा, 'न्यू इन्स्क्रिप्शन फ्राम मथुरा', पुरातत्व, सं० ८ (दिसम्बर १९७१), चित्र १।

३. वही, पृ० २५।

४. द्रष्टव्य रमेश चन्द्र शर्मा, 'निउली डिस्कवर्ड इन्स्क्रिप्शन ऑव दि रेन ऑव महाक्षत्रप शोडाष फ्रॉम मथुरा', कलचरल कण्टूर्स ऑव इण्डिया (डॉ० सत्य प्रकाश श्रीवास्तव अभिनन्दन ग्रंथ), भाग २, नई दिल्ली १९८१, पृ० ९४-१००, फलक १६।

ऐसी ही गुफा के शिला-पर्यङ्क पर श्रीवत्स तथा स्वस्तिक के प्रतीक एक साथ मिले हैं जो तृतीय शती ई० पू० के आस-पास उत्कीर्ण किए गए होंगे।[1]

श्रीवत्स तथा स्वस्तिक के साथ-साथ अङ्कन का विशेष महत्त्व था। श्री शिवराममूर्ति का कहना है कि इन दोनों प्रतीकों का एक साथ अङ्कन सार्वभौमिक कल्याण तथा सुख-सम्पन्नता जैसी मांगलिक भावनाओं का बोध कराता है। उनका अभिमत है कि अनेक अभिलेख 'स्वस्ति-श्री' शब्दों से प्रारम्भ किए गए हैं जब कि हाथीगुम्फा अभिलेख में इन शब्दों के स्थान पर स्वस्तिक एवं श्रीवत्स के प्रतीक उत्कीर्ण कर दिए गए हैं।[2] इससे यह तथ्य प्रकट होता है कि अभिलेखों में प्रयुक्त शब्द 'स्वस्ति' और 'श्री' क्रमशः स्वस्तिक एवं श्रीवत्स के संक्षिप्त स्वरूप हैं। अभिलेखों के पूर्व स्वस्तिक एवं श्रीवत्स के प्रयोग से भी इन दोनों प्रतीकों का मांगलिक स्वरूप उद्भासित होता है। वस्तुतः जिन मांगलिक भावनाओं का सर्जन साहित्य में स्वस्ति श्री शब्दों के माध्यम से संभव हुआ वही पहले स्वस्तिक एवं श्रीवत्स के प्रतीकांकन में सन्निहित था।

स्वस्तिक के अतिरिक्त कमल के संसर्ग में भी श्रीवत्स का अङ्कन पाया गया है। पूर्णरूप से प्रफुल्लित षट्दल पद्म के रूप में श्रीवत्स का एक मनोहर प्रतीक जनखत (कन्नौज) से प्राप्त वीरसेन के अभिलेख के ऊपर मिला है जो अगल-वगल नन्दिपद के एक-एक प्रतीक के वीच में अधिष्ठित है।[3] ब्राह्मी अक्षरों वाले इस अभिलेख में श्रीवत्स का लगभग वही स्वरूप उत्कीर्ण है जो मथुरा से मिले और राज्य-संग्रहालय, लखनऊ में प्रदर्शित जैन तीर्थङ्कर की एक मूर्ति के वक्ष पर अङ्कित है (चित्र १७१)।

---

१. नागस्वामी, 'जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर अण्डर पल्लवज', ऑस्पेक्ट्स ऑव जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर ऑव इण्डिया (सं० यू० पी० शाह एवं ढाकी), पृ० १२३।

२. शिवराममूर्ति, 'संस्कृत लिटरेचर ऐण्ड आर्ट : मिरर ऑव इण्डियन कल्चर', मेमॉयर्स ऑव आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, सं० ७३, १९५५, पृ० ९८।

३. डॉ० गोपाल कृष्ण अग्निहोत्री, कन्नौज : पुरातत्व और कला, कन्नौज १९१८ फलक १३१।

कमल के संसर्ग में श्रीवत्स का एक अन्य उदाहरण दक्षिण भारत के एक कन्नड़ अभिलेख में दृष्टव्य है । ९वीं शती ई० का महावली वाणरस का यह अभिलेख 'ॐ स्वस्ति श्री' से प्रारम्भ होता है । प्रथम दो पंक्तियों के बीच नौ पंखुड़ियों वाला एक पूर्ण विकसित कमल है तथा अभिलेख के अन्त में एक आसन पर श्रीवत्स का प्रतीक प्रतिष्ठित है ।[1] श्रीवत्स का यह स्वरूप उत्तर भारतीय प्राथमिक श्रीवत्स जैसा ही है ।

कमल के संसर्ग में श्रीवत्स प्रतीक का अङ्कन एक विशेष अभिप्राय का द्योतक है । कमल श्रीलक्ष्मी का आसन एवं लीला-पुष्प है । कमल के विना श्रीलक्ष्मी की कल्पना ही संभव नहीं । इसीलिए उन्हें कमला, पद्मा अथवा पद्मावती कहा गया है ।

पंचाङ्गुल

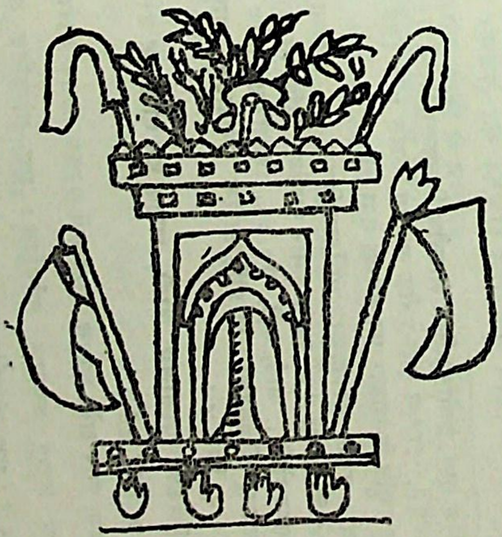
अभी कुछ दिन पहले जर्मन पुरातत्वविद् डॉ० हर्टेल द्वारा सोंख (मथुरा) का उत्खनन किया गया है। उत्खनन में ३७ पर्तों का उद्घाटन हुआ जिसमें अत्यन्त प्राचीन काल से मध्य काल तक की संस्कृति के अवशेष पाए गए हैं । प्रथम शती ई० पू० से सम्बन्धित २७वीं पर्त से पकी मिट्टी का ३.१ × २.१ सेण्टीमीटर का एक हाथ मिला है जिसकी सभी उँगलियाँ सीधी खुली हैं । इस पंचाङ्गुल की हथेली में श्रीवत्स, नन्दिपद तथा स्वस्तिक के प्रतीक उत्खचित हैं (चित्र ७२)[2]।

इस पंचाङ्गुल के संभावित उपयोग के विषय में यही कहा जा सकता है कि या तो इसका उपयोग किसी धार्मिक अनुष्ठान में किया जाता होगा अथवा इसे तावीज के रूप में पहना जाता होगा ।

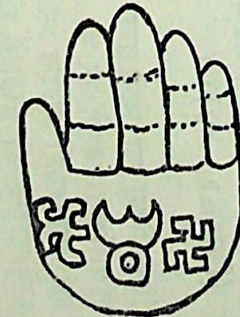
---

१. द्रष्टव्य एनुअल रिपोर्ट ऑन साउथ इंडियन एपीग्रैफी १९३१-३२, मद्रास १९३५, स० १९६, फलक १ ।

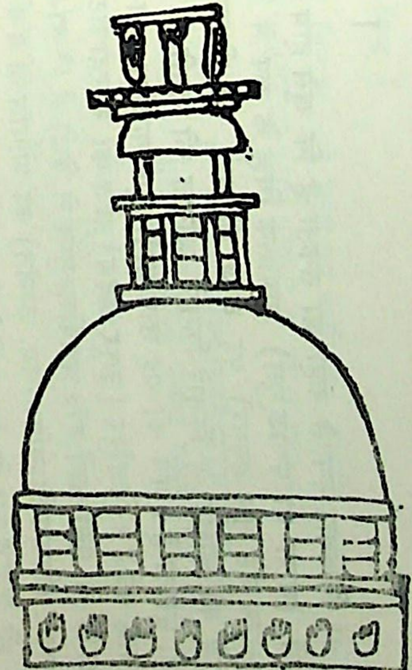
२. द्रष्टव्य नया प्रतीक (हिन्दी मासिक पत्रिका, सं० वात्स्यायन), नई दिल्ली, मई १९७४, पृ० ६०, चित्र २ । विशेष विवरण के लिए देखें हर्टेल की रिपोर्ट 'जर्मन स्कालर्स ऑन इण्डिया' खण्ड २, नचिकेता पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली १९७६, पृ० ८८, चित्र २७ । बाद वाले संदर्भ के लिए लेखक मथुरा राजकीय संग्रहालय के निदेशक (अब राज्य-संग्रहालय, लखनऊ के निदेशक) श्री रमेशचन्द्र शर्मा का कृतज्ञ है ।



७३



७२



७४

चित्र सं० ७२—७४

यह तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि खुले हाथ अथवा पंजे की छापें (थापा या पंचाङ्गुल) मांगलिक चिह्न के रूप में विवाह अथवा पुत्र-जन्म जैसे शुभ अवसरों पर आज भी घरों की दीवालों पर और दरवाजे की चौखट के किनारे-किनारे अङ्कित की जाती हैं। यह परम्परा बड़ी पुरानी है। पंजे की यह छापें प्रागैतिहास कालीन गुफा-चित्रों में अङ्कित पाई गई हैं। मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) क्षेत्र की सोरहोघाट तथा कोहवर गुफाओं में ऐसी छापें डॉ० जगदीश गुप्त ने देखी हैं।[1] डॉ० वी० एस० वाकणकर (विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन) को भोपाल क्षेत्र की कुछ गुफाओं में भी पंचाङ्गुल के चिह्न मिले हैं।[2] पंचाङ्गुल प्रतीक के शुभ चिह्न मथुरा-शिल्प के एक वोधिगृह के आधारपट्ट[3] पर तथा भरहुत शिल्प में उत्कीर्ण स्तूपों की मेधि पर तथा रत्न-चंक्रम की आधार-भित्ति पर भी उत्कीर्ण पाए गए हैं (चित्र ७३, ७४)[4]।

पंचाङ्गुल एक मांगलिक चिह्न था जिसे द्वार के पक्खों के अतिरिक्त कलश, उलूखल, मुसल तथा शिला-खण्डों पर भी अङ्कित किया जाता था। वाण ने हर्षचरित एवं कादम्बरी में इन मांगलिक चिह्नों को 'पिष्ट-पंचाङ्गुल' कहा है जिन्हें चावल की पीठी में हथेली डुबोकर अन्यत्र वही छाप लगाई जाती थी।[5] यशोधर्मन के मन्दसौर स्तम्भ-अभिलेख में कहा गया है कि 'भगवान शूलपाणि (शिव) का तेजमय ध्वज शत्रुओं के

---

१. जगदीश गुप्त, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली १९६७, पृ० ४२४-२५ एवं ४३९, द्रष्टव्य पूजा-प्रतीक अध्याय, फलक ८।३ (यह चित्र अनुकृति न होकर स्मृति के आधार पर बनाया गया है)।

२. द्र० वी० एस० वाकणकर, 'प्री-हिस्टारिकल केव पेंण्टिग्स', मार्ग, खण्ड २८, सं० ४, रेखाचित्र ३७; श्याम कुमार पाण्डेय, 'इण्डियन रॉक पेण्टिग्स : स्टडी इन सिम्बलॉजी', मार्ग, वही, पृ० ३६, रेखाचित्र फलक ७।८; वी० एस० वाकणकर, 'भीमवेटका : दि प्रीहिस्टारिक पैराडाइज़', प्राच्य प्रतिभा, खण्ड ३, सं० २, चित्र ४।

३. द्र० नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, लाइफ़ इन एन्शियण्ट उत्तरापथ, वाराणसी १९६७, चित्र ९९।

४. कनिंघम, स्तूप ऑव भरहुत, वाराणसी १९६२, फलक ३१।४।

५. वासुदेव शरण अग्रवाल, हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७०; कादम्बरी : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वाराणसी, सं० २०२७, पृ२ ८४।

यश का विनाश करे जिस पर नन्दी की आकृति बनी है और नन्दी के शरीर पर हिमालय-कन्या पार्वती के पंचाङ्गुल की छाप पड़ी है'—

> **उक्षाणं तं दधानः क्षितिधरतनयादत्तपंचाङ्गुलांकम्**
> **द्राधिष्ठः शूलपाणेः क्षपयतु भवतां शत्रुतेजांसि केतुः** [1] ।

इस प्रकार पंचाङ्गुल जैसे शुभ उपकरण में श्रीवत्स प्रतीक का उपयोग और वह भी स्वस्तिक के साथ, निश्चय योग-क्षेम को द्विगुणित करता जान पड़ता है।

वास्तु-शिल्प

भारतीय वास्तु-शिल्प में भी श्रीवत्स का सुप्रतिष्ठित एवं संपूज्य स्थान रहा है। 'श्रीवत्स प्रासाद', 'श्रीवत्स मण्डप', एवं 'श्रीवत्स शिखर' भारतीय वास्तु-ग्रन्थों में उल्लिखित हुए हैं। ग्राम अथवा नगर-भेद प्रकरणों में भी श्रीवत्स ग्राम का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रासाद अथवा मन्दिर की भित्तियों, द्वारों और खिड़कियों पर मांगलिक चिह्न के रूप में भी श्रीवत्स का उपयोग अत्यन्त लोकप्रिय था। डॉ० द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल ने अपने ग्रन्थ **भारतीय स्थापत्य** में प्रासाद-वास्तु के अन्तर्गत जिन विभिन्न शैलियों में श्रीवत्स प्रकार के प्रासादों की गणना की है वे निम्नलिखित हैं—

विशिष्ट नागर शैली के प्रासाद
(समरांगणसूत्रधार, अध्याय ५०)

मेरु, मन्दर, कैलाश, त्रिविष्टप, पृथ्वीजय, क्षितिभूषण, सर्वतोभद्र, विमान, नन्दन, स्वस्तिक, मुक्तकोण, हंस, रुचक, वर्द्धमान, गज, सिंह, **श्रीवत्स,** पद्मक, नन्दिवर्द्धन।[2]

मालव शैली के प्रासाद
(स० सू०, अध्याय ५८-५९)

इस शैली में ८ देवों के ८-८ प्रकार के प्रासाद गिनाए गए हैं। इनमें सूर्य के प्रासादों में श्रीवत्स की गणना है—

---

१. वासुदेव उपाध्याय, गुप्त अभिलेख, पटना १९७४, पृ० २२४।
२. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, भारतीय स्थापत्य, लखनऊ १९६८, पृ० २७५।

गवय, चित्रकूट, किरण, सर्वसुन्दर, **श्रीवत्स,** पद्मनाभ, वैराज एवं वृत्त।[1]

मेर्वादि शैली के षोड्स प्रासाद
(स० सू० अध्याय ५५)

मेरु, कैलाश, सर्वतोभद्र, विमानच्छन्द, नन्दन, स्वस्तिक, मुक्तकोण, **श्रीवत्स,** हंस, रुचक, वर्द्धमान, गरुड़, गज, सिंह, पद्म और वल्लभी[2]।

लाट शैली के प्रासाद
(अग्निपुराण, अध्याय १०४,श्लोक २२)

इस शैली में ५ देवों के ६-६ प्रकार के प्रासाद वताए गए हैं। इनमें ब्रह्मा के वैराजसंभूत ६ चतुरस्र प्रासादों के नाम निम्न हैं—मेरु, मन्दर, विमान, नंदिवर्द्धन, नन्दन, भद्रक, सर्वतोभद्र, रुचक और **श्रीवत्स**[3]।

गरुड़ पुराण (अध्याय ४७, श्लोक २४, २५) में भी श्रीवत्स एक प्रकार का भवन कहा गया है।[4] प्रासाद-शिल्प के अतिरिक्त श्रीवत्स नाम का एक मण्डप भी होता था। मत्स्य पुराण (अध्याय २७०, श्लोक ६) में ४८ स्तम्भों वाले 'श्रीवत्स मण्डप' का उल्लेख है[5]। **रघुवंश** में मंगलायतन को श्रीवत्स कहा गया है जिसे टीकाकार मल्लिनाथ ने एक विशेष प्रकार का भवन वतलाया है—श्रीवत्स नाम गृहविशेषः[6]।

---

१. **वही, पृ० २७७।**
२. **वही, पृ० २७६।**
३. **वही, पृ० २८४।**
४. **प्रसन्न कुमार आचार्य, डिक्शनरी आंव हिन्दू आर्कीटेक्चर, इलाहाबाद १६२७, शब्द 'श्रीवत्स', पृ० ५६८।**
५. **वही।**
६. **रघुवंश, १७।२६, द्रष्टव्य अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० ६४।**

सूत्रधार मण्डन द्वारा विरचित 'प्रासाद मण्डन' नामक ग्रन्थ में श्रीवत्स प्रासाद एवं शृंग या शिखर दोनों रूपों में उल्लिखित हुआ है। एक स्थान पर कहा गया है कि एक शृंग वाले प्रासाद 'लतिन' कहलाते हैं, जलमार्ग वाले प्रासाद 'श्रीवत्स' कहे जाते हैं और परिक्रमा-पथ वाले प्रासाद नागर होते हैं जिन्हें 'सान्धार प्रासाद' कहते हैं—

शृंगेणैकेन लतिनाः श्रीवत्साः वारिसंयुताः
नागरा भ्रमसंयुक्ताः सान्धारास्ते प्रकीर्तिताः ।[1]

(अध्याय ६, श्लोक ३०)

दूसरे स्थान पर नन्दन प्रासाद का वर्णन है जहाँ पर कहा गया है कि इसका मान और स्वरूप श्रीवत्स प्रासाद तथा सर्वतोभद्र प्रासाद के अनुरूप जानें, अन्तर मात्र इतना है कि भद्र के गवाक्ष और उद्गम के ऊपर एक-एक उरु-शृंग चढ़ावें। नन्दन प्रासाद को बनाने वाला स्वामी आनन्द से रहता है और यह प्रासाद सब पापों का नाश करता है—

श्रीवत्स भद्रमारूढ़ं रथिकोद्गमभूषिते
नन्दने नन्दति स्वामी दुरितं हरति ध्रुवम् ।[2]

इसी ग्रन्थ में जैन तीर्थङ्कर चन्द्रप्रभवल्लभ के शीतल प्रासाद के सन्दर्भ में कहा गया है कि कोण के और उपरथ के ऊपर श्रीवत्स, केसरी और सर्वतोभद्र शृंग चढ़ावें—

श्रीवत्सं केसरीं चैव सर्वतोभद्रमेव च
कर्णे चैव प्रदातव्यं रथे चैव तु तत्समम् ।[3]

अन्यत्र कहा गया है कि भद्र प्रासाद के ऊपर ५-५ उद्गम करें, कोण के ऊपर २-२ एवं कुल ८ शृंग चढ़ावें और आमलसार तथा कलश वाला श्रीवत्स शिखर चढ़ावें—

---

१. सूत्रधार मण्डन विरचित प्रासाद मण्डन (अनु० एवं० सं० पंडित भगवानदास जैन, जयपुर सिटी, १९६३), पृ० ११२।

२. वही, पृ० १७१।

३. वही, पृ० १९२।

भद्रे वै तद्गमाः पञ्चकणऽष्ट शृङ्गणानि च

श्रीवत्सशिखरं कार्यं घण्टाकलशसंयुतम् ।[1]

वास्तु-शिल्प में ही नहीं नगर-नियोजन में भी श्रीवत्स प्रकार की परम्परा शिल्पग्रन्थों में पाई जाती है। मानसार, मयमत तथा कामिकागम में ग्राम-प्रभेद की चर्चा है।[2] मानसार के अन्तर्गत आकार के आधार पर तथा मयमत में मार्ग-योजना के आधार पर यह प्रभेद किया गया है। इन ग्राम-प्रभेदों में स्वस्तिक, नन्द्यावर्त, पद्मक, सर्वतोभद्र आदि के साथ-साथ कामिकागम में श्रीवत्स भी एक प्रकार का ग्राम-प्रभेद बतलाया गया है।[3] परन्तु जहाँ अन्य प्रकार के ग्राम-प्रभेदों का विस्तार से परिचय दिया गया है वहाँ श्रीवत्स नामक ग्राम-प्रभेद का कोई विवेचन नहीं मिलता है।[4]

श्रीवत्स ग्राम अथवा श्रीवत्स प्रासाद किस विशेष तल-योजना पर आधारित थे, यह कहीं से स्पष्ट नहीं हो पाता है। वस्तुतः ये प्रभेद मांगलिक ग्राम, मांगलिक प्रासाद, मांगलिक मण्डप एवं मांगलिक श्रृंग के रूप में थे। तभी इन प्रभेदों की संज्ञा प्रायः मंगल-चिह्नों पर ही आधारित थी। सुख, सम्पन्नता और कल्याण की प्राप्ति के लिए ही इन मांगलिक प्रतीकों को परिकल्पना की गई थी। मानसार में विमान-लक्षण के रूप में इसीलिए श्रीवत्स की मांगलिक रूपाकृति के निर्माण का विधान प्रस्तुत किया गया है—

श्रीवत्साकारमग्रे तु वक्त्रं धृत्वा लिखेद् बुधः

स्वस्तिवाच (न) घोषेण जय शब्दादिमंगलैः ।

(**मानसार**, अध्याय १८, पंक्ति ३७५-७६)

अर्थात् चतुर वास्तुविद को चाहिए कि विमान प्रासाद के मुख भाग पर 'स्वस्ति' एवं 'जय' आदि मांगलिक शब्द-घोष के साथ श्रीवत्स चिह्न को

---

१. वही, पृ० १७१।
२. द्विजेन्द्र नाथ शुक्ल, भारतीय वास्तुशास्त्र, लखनऊ १९५५, पृ० ११४-१५।
३. वही, पृ० ११५।
४. वही, पृ० ११९।

रूपायित करे।[1] रायपसेणिय सुत्त (कण्डिका ६६) में तोरण के ऊपर मांगलिक प्रतीकों के उत्कीर्ण करने का विधान दिया गया है।

मांगलिक प्रतीक के रूप में श्रीवत्स का बहुविधि उपयोग भारतीय वास्तुकला में हुआ था, इसकी पुष्टि तो उत्कीर्ण-शिल्प से हो जाती है; पर अभी तक श्रीवत्स प्रकार के ग्राम या नगर, प्रासाद, मण्डप अथवा शृंग के उदाहरण नहीं मिल पाए हैं। मांगलिक चिह्न के रूप में श्रीवत्स साँची, भाजा, नासिक एवं अमरावती के बौद्ध शिल्प में तथा उदयगिरि-खण्डगिरि और मथुरा के जैन शिल्प में उत्कीर्ण पाया गया है।

साँची के विशाल स्तूप के उत्तरी तोरण की ऊपरी बड़ेरी पर पाए गए विशाल श्रीवत्स का वर्णन प्रारम्भ में ही किया जा चुका है (द्रष्टव्य चित्र १६)। भाजा के गुहा-चैत्यों के स्तम्भों पर भी जिन मांगलिक चिह्नों को उत्कीर्ण किया गया था उनमें श्रीवत्स का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है।[2] नासिक के गुहा-चैत्य सं० १२ की मेहराव में नन्दिपद और श्रीवत्स का अङ्कन एक-दूसरे के ऊपर किया गया है (चित्र ७५)।[3] जिस प्रकार हाथी-गुम्फा-अभिलेख में श्रीवत्स स्वस्तिक के ऊपर उत्कीर्ण है उसी प्रकार नासिक-चैत्य में वह नन्दिपद के ऊपर अङ्कित है। ये उदाहरण श्रीवत्स की सर्वोच्च महत्ता एवं सर्वाधिक लोकप्रियता के प्रमाण हैं।

अमरावती-शिल्प में खिड़कियों की चैत्याकार मेहराबों के शीर्ष श्रीवत्स के प्रतीक से अलंकृत हैं (चित्र ७६)।[4] अमरावती में श्रीवत्स को वही सर्वोच्च एवं संपूज्य स्थान मिला था जो आगे चलकर हिन्दू मंदिरों में कलश को प्रदान किया गया था।

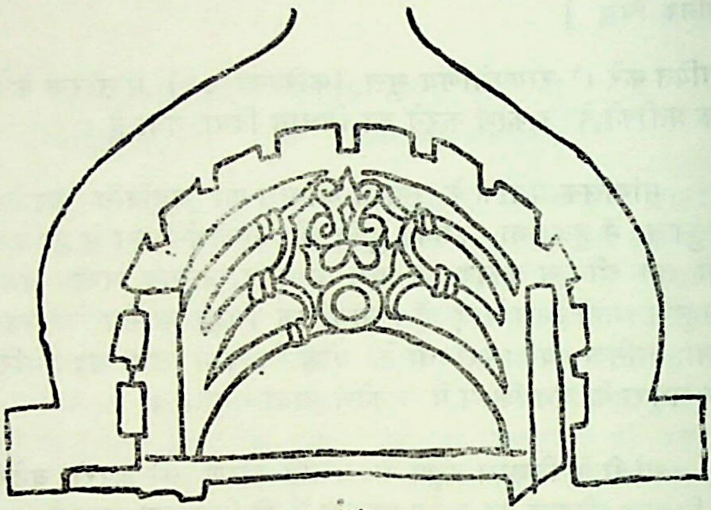
---

१. प्रसन्न कुमार आचार्य, **दि मानसार टेक्स्ट**, खण्ड ३, पृ० १४१, अनुवाद खण्ड ४, पृ० २१६।

२. फर्गुसन एवं बर्जेस, **केव टेम्पुल्स ऑव इण्डिया**, लन्दन १८८०, पृ० २२५, फलक ७।८।

३. द्रष्टव्य जेम्स फर्गुसन तथा जेम्स बर्जेस, **उपरोक्त**, फलक २५।

४. द्रष्टव्य शिवराममूर्ति, **अमरावती स्कल्पचर्स........**, पृ० ८३, फलक ६१।२; ४।३८।



७५



७६

चित्र सं० ७५—७६

उदयगिरि की रानीगुम्फा[1] एवं गणेशगुम्फा[2] के तथा खण्डगिरि की अनंतगुम्फा[3] के द्वारों को उत्कीर्ण मेहराबों से सजाया गया है। इन मेहराबों के ऊपर बीचो-बीच त्रिरत्न अथवा श्रीवत्स के प्रतीक को उकेर दिया गया है। श्रीवत्स प्रतीक की स्थिति जहाँ रानीगुम्फा और अनन्तगुम्फा की मेहराबों के ऊपर है वहाँ गणेशगुम्फा में मेहराबों के भीतर है (चित्र ७७-७६)। अनन्तगुम्फा के द्वार और मेहराब के बीच वाले भाग पर श्रीलक्ष्मी का अङ्कन है। लक्ष्मी के संसर्ग में श्रीवत्स की यह स्थिति विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। लक्ष्मी के साथ श्रीवत्स के संसर्ग का संकेत अमरावती-शिल्प से प्रकट होता है क्योंकि जिस चैत्याकार खिड़की के शीर्ष के ऊपर श्रीवत्स का अङ्कन है उसी खिड़की में शालभंजिका के रूप में एक नारी-मूर्ति उत्कीर्ण है। श्रीवत्स के संसर्ग के कारण ही विद्वान् इस नारी-मूर्ति की पहचान लक्ष्मी से करते हैं।

मथुरा के एक कुषाणकालीन जैन आयागपट्ट पर एक स्तूप को उत्कीर्ण किया गया है। इस स्तूप के तोरण की बड़ेरियों को अलग करने वाले जो उपशीर्ष हैं उन पर श्रीवत्स के प्रतीक उत्कीर्ण हैं (चित्र ८०)।[4] जूनागढ़ में गिरिनार के समीप बाबा प्यारा मठ की गुफा सं० 'के' में द्वार के ऊपर एक पंक्ति में उत्कीर्ण ग्यारह मांगलिक चिह्नों की ओर सबसे पहले बर्जेस ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था। इनमें कलश, स्वस्तिक, भद्रासन, मीन-मिथुन तथा श्रीवत्स स्पष्ट हैं (चित्र ८१)।[5]

---

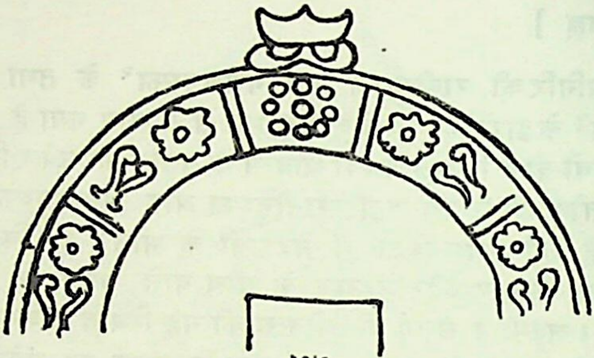
१. द्रष्टव्य देबला मित्रा, उदयगिरि ऐण्ड खण्डगिरि, नई दिल्ली, १६६०, फलक ३ ए।

२. द्रष्टव्य राजेन्द्रलाल मित्र, दि एण्टीक्विटीज़ ऑव उड़ीसा, खण्ड २, कलकत्ता १६६३, फलक १५।

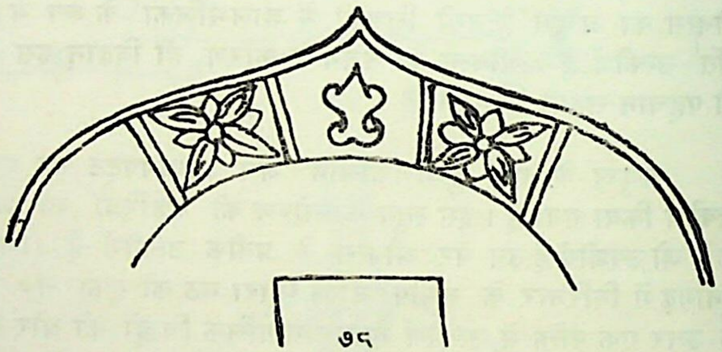
३. द्रष्टव्य आर० एस० वाऊचोपे, बुद्धिस्ट केव टेम्पुल्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता १६३३, फलक १४।२; ओसमू तकाता, दि आर्ट ऑव इण्डिया, खण्ड २ चित्र ३११।

४. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ७६।

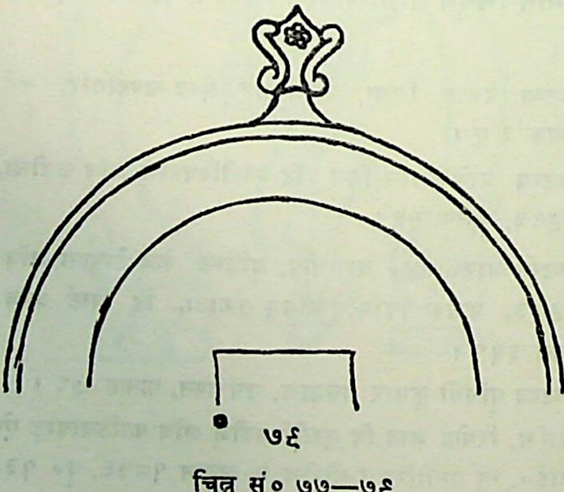
५. बर्जेस, रिपोर्ट आन दि एण्टीक्विटीज़ ऑव काठियावाड़ ऐण्ड कच्छ, ए०एस० आई०, न्यू इम्पीरियल सीरीज़ २, लन्दन १८७६, पृ० १३६ और आगे।



७७

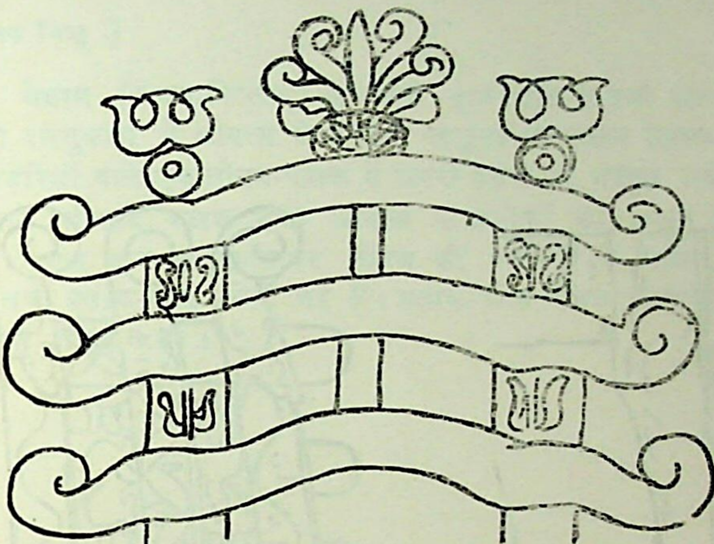


७८



७९

चित्र सं० ७७—७९

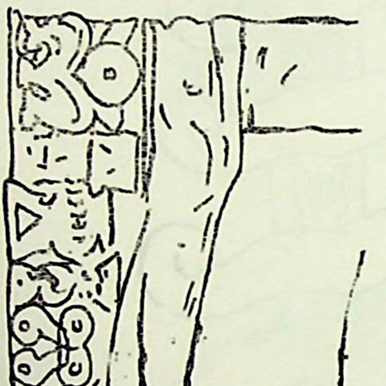


८०

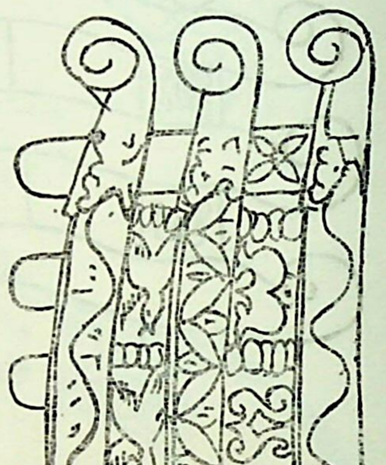


८१

चित्र सं० ८०—८१



८२



८३

चित्र सं० ८२—८३

बेग्राम (अफगानिस्तान) से मिली हाथी दाँत से बनी कलाकृतियों से भी वास्तुकला में श्रीवत्स के ऐसे ही अङ्कनों का साक्ष्य उपलब्ध होता है। बड़ेरियों वाले एक तोरण-फलक में ऊपरी बड़ेरी पर भरहुत एवं साँची के समान नन्दिपद, कलश तथा श्रीवत्स के प्रतीकों का अङ्कन है (चित्र ८२)।[1] एक अन्य कलाकृति पर तोरण की बड़ेरियों के मध्य में हंस-पंक्ति तथा प्रतीक-पंक्ति उकेरी गई हैं। प्रतीक-पंक्ति में नन्दिपद एवं श्रीवत्स प्रमुख हैं (चित्र ८३)।[2]

---

१. द्रष्टव्य विनोद प्रकाश द्विवेदी, उपरोक्त, फलक ६३।

२. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक २०।

हस्तरेखां प्रवक्ष्यामि देवानां शुभलक्षणम्
शंखं पद्मं ध्वजं वज्रं चक्रं स्वस्तिककुण्डलम् ।
कलशं शशिनक्षत्रं श्रीवत्सांकुशमेव च
त्रिशूलं जप मालाश्च कुर्वीत वसुधां तथा ।।

प्रतिमामानलक्षणम्, ५३-५४ ।

श्रीवत्स : एक महापुरुष-लक्षण

श्रीवत्स को महापुरुषों के एक लक्षण या लांछन के रूप में भी भारतीय कला में विभिन्न रूपों में उकेरा गया है। महापुरुष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स प्रतीक की उद्भावना का आधार संभवतः वक्ष पर उगे बालों का गुच्छा या घूँघर रहा होगा जो सामान्यतः सभी पुरुषों के वक्ष पर न उगा मानकर केवल महापुरुषों के वक्ष पर ही शोभित माना गया है।[१] इस कथन की सम्पुष्टि हरिवंश पुराण (३।७०।३३) से हो जाती है जहाँ वामन के प्रसंग में कहा गया है—

श्रीवत्सेनोरसि श्रीमान् रोमजातेन राजता।

हेमचन्द्र ने भी अभिधानचिन्तामणि (२।१३६) में इसे वह विशेष रोमावर्त कहा है जिससे वक्ष (या वत्स) श्री से युक्त हो—

---

१. हलायुधकोश "स तु वक्षस्य शुक्लवर्णदक्षिणावर्तं लोमावली"।

श्रिया युक्तो वत्सो वक्षोऽनेन श्रीवत्सः रोमावर्तविशेषः।

इसीलिए जैन तीर्थङ्करों तथा हिन्दू देवताओं के वक्ष पर उत्कीर्ण लाक्षणिक चिह्न को श्रीवत्स कहा गया है।

जैन, बौद्ध तथा ब्राह्मण सभी संप्रदायों के साहित्य में महापुरुषों के कतिपय विशेष लक्षणों की मान्यता है। जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं के प्रमुख लांछनों में आजानु भुजाएँ, प्रशान्त मुखमुद्रा, नग्न अवस्था तथा वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न बताए गए हैं—

निराभरणसर्वाङ्गं निर्वस्त्रांगं मनोहरम्
सर्ववक्षस्थले हेमवर्णश्रीवत्सलांछनम्।
(मानसार, ५५।४६)

तथा

आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्सांकः प्रशान्तमूर्तिश्च
दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः।
(बृहत्संहिता, ५८।४५)

प्रवचनसारोद्धार नामक ग्रन्थ में जैन तीर्थङ्करों के निम्न लक्षण गिनाए गए हैं—

वसह गय तुरय वानर कमलं च सत्थियो चंदो
मयर सिरिवच्छ गण्डय महिस वराहोय सेणो य
वज्जं हरिणो छगलो नन्दावत्तो य कलस कुंभो य
नीलुप्पल संख फनी सीहो य जिणाण चिण्हाइं।[1]

औपपातिक सूत्र, १६ में महावीर के वक्ष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स का उल्लेख हुआ है—

सिरिवच्छंकिय वच्छे।

छठी शती ई० में रचित वास्तुशिल्प के ग्रंथ **मानसार** (५५।७१-९५)

१. जनार्दन मिश्र, प्रतीक विद्या, पटना १९५९, पृ० २५२, टि० २ ख।

में कहा गया है कि तीर्थङ्कर की मूर्ति के वक्ष पर स्वर्णचिह्नित श्रीवत्स प्रतीक की प्रतिष्ठा की जानी चाहिए ।[1]

वौद्ध ग्रन्थों (ललितविस्तर, महापधानसुत्त तथा धर्मप्रदीपिका) में भी महापुरुषों के लक्षणों की लम्बी सूची दी गई है जिनमें ३२ प्रमुख लक्षण (व्यंजन) तथा श्रीवत्स समेत ८० गौण लक्षण (अनुव्यंजन) गिनाए गए हैं ।[2] यहाँ पर श्रीवत्स बुद्ध के पाणि तथा पदचिह्न के रूप में वर्णित है। मज्झिम निकाय के ब्रह्मायु सुत्तन्त (२।५।१) में बुद्ध के समस्त २२ लक्षणों के नाम उल्लिखित हैं जिनमें से कुछ ही प्रतिमाओं पर दिखाई पड़ते हैं ।[3] सम्यकसम्बुद्धभाषित प्रतिमामानलक्षणम् में भी हस्त-चिह्न के रूप में शंख, पद्म, ध्वज, वज्र, चक्र, स्वस्तिक, कुण्डल, कलश, शशि, नक्षत्र, अंकुश, त्रिशूल, माला आदि के साथ श्रीवत्स को देवताओं का शुभ-लक्षण वतलाया गया है—

हस्तरेखां प्रवक्ष्यामि देवानां शुभलक्षणम्
शंखं पद्मं ध्वजं वज्रं चक्रं स्वस्तिककुण्डलम्
कलशं शशिनक्षत्रं श्रीवत्सांकुशमेव च
त्रिशूलं यव (जप) मालाश्च कुर्वीत वसुधां तथा ।
(प्रतिमामानलक्षणम् ५३-५४)[4]

इन वौद्ध साक्ष्यों से एक तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि मांगलिक चिह्न ही महापुरुष-लक्षण के रूप में अपनाए गए थे और चूँकि श्रीवत्स मांगलिक चिह्नों में सर्वोपरि था इसीलिए उसे वक्ष-लक्षण का सम्मान प्राप्त हुआ ।

विष्णु के वक्षस्थल पर श्रीवत्स लक्षण के अनेक सन्दर्भ साहित्य में पाए गए हैं । महाभारत में रुद्र और नारायण के वीच हुए युद्ध का रोचक

---

१ जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर, खण्ड ३, पृ० ४६७ ।

२. जेम्स वर्जेस, बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, नया संस्करण, नई, दिल्ली, पृ० १६१-६२ ।

३. वासुदेव उपाध्याय, प्राचीन भारतीय मूर्ति-विज्ञान, वाराणसी १६७०, पृ० २८२-८३ ।

४. द्रष्टव्य जितेन्द्रनाथ वनर्जी, डेवलेपमेण्ट ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफ़ी, नया संस्करण, परिशिष्ट बी, पृ० ५६३ ।

वर्णन है। युद्ध के बाद जब सन्धि हुई तो रुद्र से नारायण ने कहा कि आपके शूल से अङ्कित मेरे वक्ष का यह चिह्न आज से श्रीवत्स होगा तथा मेरे हाथ से आपके कण्ठ में जो चिह्न अङ्कित हो गया है उससे आप श्रीकण्ठ कहलायेंगे—

अद्यप्रभृति श्रीवत्सः शूलांकोऽयं भवत्वयं
मम पाण्यंकितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि।
(शान्तिपर्व, ३३०।६५)

रामायण में रावण के वध के बाद विलाप करती हुई मन्दोदरी ने राम को विष्णु का अवतार माना है तथा उन्हें 'शंखचक्रगदाधरः' और 'श्रीवत्सवक्षः' कहा है—

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः।
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्
तमसः परमो धाता शंखचक्रगदाधरः।
श्रीवत्सवक्षो नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतोध्रुवः
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः।
(युद्धकाण्ड, १११।११-१३)

रघुवंश तथा **कुमारसंभव** में भी विष्णु के वक्षस्थल पर श्री-लक्ष्मी और कौस्तुभमणि के साथ-साथ श्रीवत्स की उपस्थिति का मनोहारी वर्णन है—

प्रभानुलिप्तश्रीवत्सं लक्ष्मीविभ्रमदर्पणम्
कौस्तुभाख्यमपां सारं बिभ्राणं बृहतोरसा।
(रघुवंश, १०।१०)

तथा

तमभ्यगच्छत्प्रथमो विधाता श्रीवत्सलक्ष्मा पुरुषश्च साक्षात्।
(कुमारसंभव, ७।४३)

अमरकोश (१।४३) में विष्णु को 'श्रीवत्सलांछनः' कहा गया है। उन्हें **बृहत्संहिता** में 'श्रीवत्सांकितवक्षः' तथा **गोपालउत्तरतापनीय उपनिषद्** में 'श्रीवत्सलांक्षनं हृतस्थं' कहा गया है—

कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः
श्रीवत्सांकितवक्षः कौस्तुभमणि भूषितोरस्कः ।
(बृहत्संहिता, ५८।३१)

तथा

दिव्यध्वजातपत्रैस्तु चिह्नितं चरणद्वयम्
श्रीवत्सलांक्षनं हृतस्थं कौस्तुभप्रभायुतम् ।
चतुर्भुजं शंखचक्रशार्ङ्गपद्मगदान्वितम्
सुकेयूरान्वितं बाहुं कण्ठमाला सुशोभितम् ।
(गोपालउत्तरतापनीय उपनिषद् ४६, ४७)[१]

हलायुधकोश में कौस्तुभमणि तथा श्रीवत्स दोनों को विष्णु के वक्ष पर आसीन दिखाया गया है।[२] **समवायांग सूत्र** में बलदेव-वासुदेव के वक्ष पर श्रीवत्स का उल्लेख है।[३] **महाभारत** (उद्योग पर्व, ९९।५) तथा **विष्णु धर्मोत्तर पुराण** (१।२४८।३५) में गरुड़ तथा सुपर्णों को श्री तथा श्रीवत्स लक्षण से युक्त कहा गया है।

बृहत्संहिता में महापुरुषों के लक्षणों के अतिरिक्त पुरुष-लक्षणों एवं स्त्री-लक्षणों पर भी स्वतंत्र अध्यायों में चर्चा की गई है। पुरुष-लक्षणों का उल्लेख हस्तरेखाओं के रूप में किया गया है। कहा गया है कि जिन पुरुषों की हथेली में मीन-मिथुन का चिह्न होता है वह सदावृत देने वाला होता है। इसी प्रकार पुरुष शंख, छत्र, पालकी, हस्ति, अश्व और कमल चिह्नों के होने से राजा; मत्स्य से विद्वान्; वज्र, कलश, मृणाल, पताका और अंकुश से धनी; मकर, ध्वज और कोष्ठागार से अति धनी; स्वस्तिक से ऐश्वर्यशाली; चक्र, परशु, तोमर आदि शस्त्रों से सेनापति; वेदी से अग्निहोत्री तथा वापी, देव-मन्दिर, सिंहासन, श्रीवृक्ष और यूप से धार्मिक होता है।[४] इसी सन्दर्भ में **समुद्र** का जो अभिमत है उसमें श्रीवृक्ष के स्थान पर श्रीवत्स प्रतीक का उल्लेख है—

---

१. एलन डेनियल, हिन्दू पॉलीथीज्म, लन्दन १९६४, पृ० ४२६।

२. हलायुद्धकोश, शब्द 'श्रीवत्स' (सं० जयशंकर जोशी, वाराणसी, शक सं० १८७९)।

३. पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० ३२, टि० ५।

४. बृहत्संहिता, ६८।४४-५०।

यज्ञयाजी भवेन्नित्यं बहुवित्तश्च मानवः
श्रीवत्समथवा पद्मं वज्रं चामरमेव वा ।[1]

स्त्री-लक्षण अध्याय में कहा गया है कि जिन स्त्रियों के करतल या पदतल पर झारी, आसन, अश्व, हस्ति, रथ, श्रीवृक्ष, यूप, वाण, माला, कुण्डल, चामर, अंकुश, यव, शैल, ध्वज, तोरण, मीन, स्वस्तिक, वेदिका, व्यज़न, शंख, छत्र एवं कमल के रेखांकन होते हैं वे स्त्रियाँ रानी वनती हैं—

भृंगारासन वाजि कुंजर रथश्रीवृक्षयूपेषुभिः
मालाकुण्डलचामरांकुशयवैः शैलैर्ध्वजैस्तोरणैः ।
मत्स्यस्वस्तिकवेदिकाव्यजनकैः शंखातपत्राम्बुजैः
पादेपाणितलेऽथवा युवतयो गच्छन्ति राज्ञीपदम् ।
(बृहत्संहिता, ६७।१०)

स्त्री-लक्षण के सन्दर्भ में समुद्र का जो मत है उसमें भी श्रीवृक्ष के स्थान पर श्रीवत्स चिह्न का उल्लेख पाया जाता है—

मत्स्यः पाणितले छत्रं कच्छपो वा ध्वजोऽपि वा
श्रीवत्सं कमलं शंखमासनं चामरं तथा ।
अंकुशश्चैव माला च यस्याः हस्ते तु दृश्यते
एकं सा जनयेत् पुत्रं राजानं पृथिवीपतिम् ।[2]

जैन प्रतिमाएँ

यद्यपि श्रीवत्स को महापुरुष-लक्षण के रूप में स्वीकार करने वाला सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ **रामायण** है जो कि एक ब्राह्मण-ग्रन्थ है, परन्तु भारतीय कला में श्रीवत्स का सर्वाधिक प्राचीन अङ्कन अधिकांशतः जैन मूर्तियों पर ही पाया जाता है ।

महापुरुष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स का उपयोग सर्वप्रथम मथुरा की जैन तीर्थङ्कर प्रतिमाओं पर किया गया था । तत्पश्चात् इसे बौद्ध एवं ब्राह्मण प्रतिमाओं के वक्ष पर भी उकेरा जाने लगा । ऐसी स्थिति में यह

१. वही, पृ० ४२६ ।
२. वही, पृ० ४५० ।

परिकल्पना विल्कुल निराधार नहीं कही जा सकती कि ब्राह्मण संस्कृत साहित्य में महापुरुष-लक्षण अथवा विष्णु के वक्ष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स के जो उल्लेख हैं वे संभवतः जैन प्रतिमाओं के प्रभाव के स्वरूप ही रहे होंगे।

कुषाणकाल के पहले की जैन तीर्थङ्कर की मूर्तियों का अङ्कन केवल आयागपट्टों के केन्द्र में ही पाया गया है जिनमें श्रीवत्स प्रतीक का अङ्कन वक्ष पर नहीं है। किन्तु कुषाणकालीन मथुरा की जैन मूर्तियों की पहचान मात्र इसी प्रतीक से संभव हो सकी है।[1] मथुरा से प्राप्त होने वाली तीर्थङ्करों की मूर्तियों के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का जो लांछन पाया गया है वह शुंगयुगीन श्रीवत्स का अलंकृत रूप ही है। (चित्र ८४)[2] मथुरा से मिली ऐसी जैन तीर्थङ्करों की १७ मूर्तियाँ मथुरा के पुरातात्त्विक संग्रहालय में तथा १४ लखनऊ के राज्य-संग्रहालय में हैं। इनके वक्ष पर अङ्कित श्रीवत्स कुषाण तथा गुप्तयुगीन अपने स्वरूप-विकास का अच्छा उदाहरण प्रस्तुत करता है। विदिशा-क्षेत्र से मिली तत्कालीन तीर्थङ्कर प्रतिमाओं के वक्ष पर उत्कीर्ण लांछन भी उसी स्वरूप में प्राप्त होता है (चित्र ८५)।[3]

मथुरा-संग्रहालय की वर्द्धमान की एक आदमकद प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स एक सुन्दर मध्यमणि के समान अङ्कित है जिसका स्वरूप लगभग कमलपुष्प जैसा है (चित्र १७०)।[4] लखनऊ के राज्य-संग्रहालय की एक जैन प्रतिमा पर भी कमल जैसा श्रीवत्स दिखाई देता है (चित्र १७१)।[5] राज्य-

---

१. वासुदेव शरण अग्रवाल, 'कैटेलॉग ऑव दि मथुरा म्यूजियम', जर्नल ऑव दि यू०पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, खण्ड २३, भाग १-२ (१९५०), पृ० ३६-५८; नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी, मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, १९६६, फलक ३५, ४१, ६६।

२. द्रष्टव्य वासुदेव शरण अग्रवाल, इण्डियन आर्ट, वाराणसी १९६५, चित्र १४४; कृष्ण दत्त बाजपेयी, मथुरा, लखनऊ १९५५, फलक २८। द्रष्टव्य जैन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर, फलक १७, ४३, ४४।

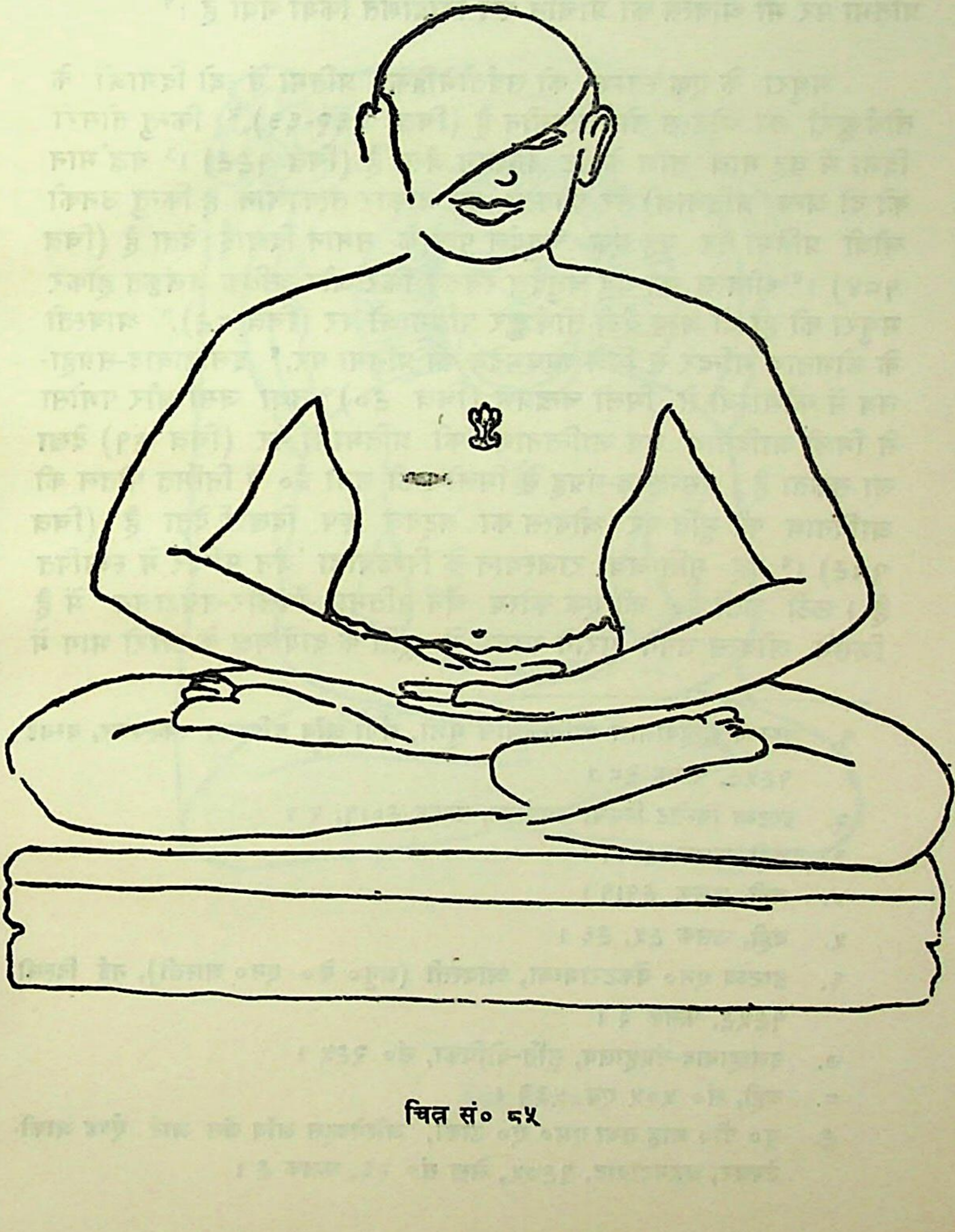
३. द्रष्टव्य जैन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर, फलक ५९।

४. द्रष्टव्य विन्सेट स्मिथ, उपरोक्त, फलक ७७।

५. द्रष्टव्य जैन आर्ट ऐण्ड आर्किटेक्चर, फलक ४५।



चित्र सं० ८४



चित्र सं० ८५

संग्रहालय की अन्य जैन प्रतिमाओं के वक्ष का लांछन कुषाणकालीन श्रीवत्स जैसा है (चित्र ८६-८८)। उसी संग्रहालय में सप्त फण वाले पार्श्वनाथ की प्रतिमा पर भी श्रीवत्स का प्राचीन रूप दिग्दर्शित किया गया है।[१]

मथुरा के एक स्तम्भ की सर्वतोभद्रिका प्रतिमा में दो दिशाओं के तीर्थङ्करों का श्रीवत्स तो तत्युगीन है (चित्र १६२-६३),[२] किन्तु तीसरी दिशा में वह मात्र ताश के ईट निशान जैसा है (चित्र १६६)।[३] वर्द्धमान की दो अन्य प्रतिमाओं पर श्रीवत्स का आकार तत्कालीन है किन्तु उनकी चौथी प्रतिमा पर वह एक चतुर्दल पुष्प के समान दिखाई देता है (चित्र १८४)।[४] श्रीवत्स का यह चतुर्दल स्वरूप फिर और अधिक अलंकृत होकर मथुरा की ही दो अन्य बैठी तीर्थङ्कर प्रतिमाओं पर (चित्र ८६),[५] श्रावस्ती के शोभनाथ मन्दिर से मिले ऋषभदेव की प्रतिमा पर,[६] इलाहाबाद-संग्रहालय में कौशाम्वी से मिली चन्द्रप्रभ (चित्र ६०)[७] तथा जसो और पभोसा से मिली आदिनाथ एवं शान्तिनाथ[८] की प्रतिमाओं पर (चित्र ६१) देखा जा सकता है। वसन्तगढ़-संग्रह से मिली छठीं शती ई० में निर्मित पीतल की आदिनाथ की मूर्ति पर श्रीवत्स का षट्दल रूप दिखाई देता है (चित्र १८६)।[९] यह मूर्ति अव राजस्थान के पिण्डवाड़ा जैन मन्दिर में स्थापित है। छठीं शती ई० की एक कांस्य जैन प्रतिमा बँगलौर-संग्रहालय में है जिसमें श्रीवत्स अपने पुराने स्वरूप में मूर्ति के दायें वक्ष के ऊपरी भाग में

---

१. द्रष्टव्य कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, सैगा ऑव इण्डियन स्कल्पचर, वम्बई १६५७, फलक २८।

२. द्रष्टव्य विन्सेट स्मिथ, उपरोक्त, फलक ६०।१, २।

३. वही, फलक ६०।३।

४. वही, फलक ६१।१।

५. वही, फलक ६५, ६६।

६. द्रष्टव्य एम० वेंकटरामय्या, श्रावस्ती (अनु० के० एन० शास्त्री), नई दिल्ली १६५६, फलक ३।

७. इलाहाबाद-संग्रहालय, मूर्ति-वीथिका, सं० २६५।

८. वही, सं० ५०५ एवं ५३३।

९. यू० पी० शाह तथा एम० ए० ढाकी, ऑस्पेक्ट्स ऑव जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर, अहमदाबाद, १६७५, लेख सं० २६, फलक ६।



चित्र सं० ८६



चित्र सं० ८७



चित्र सं० ८८



चित्र सं० ८६

आसीन है(चित्र ६२)।[1] श्रीवत्स का रेखांकित स्वरूप तत्कालीन एक अन्य कांस्य-प्रतिमा पर पाया गया है जो लन्दन के विक्टोरिया एवं ·एलवर्ट संग्रहालय में प्रदर्शित है[2] तथा दूसरी चौसा से मिली और पटना-संग्रहालय में प्रदर्शित है (चित्र ६३)।[3]

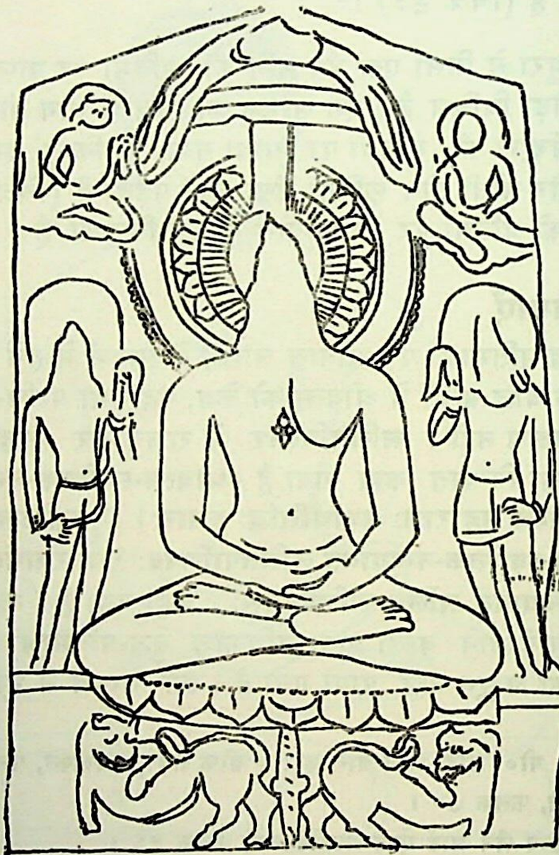
मथुरा से मिली एक जैन मुनि की प्रतिमा पर प्राप्त श्रीवत्स लांछन का रूप थोड़ा विचित्र है। इस लांछन का निचला भाग तो वैसा ही है जैसा अन्य तीर्थङ्करों की मूर्तियों पर पाया गया है, किन्तु इसका ऊपरी भाग नुकीली और सीधी तीन छुरियों जैसा जान पड़ता है (चित्र ६४)।[4] प्रथम शती ई० की प्रतिमा पर यह श्रीवत्स लांछन निराला है।

बौद्ध प्रतिमाएँ

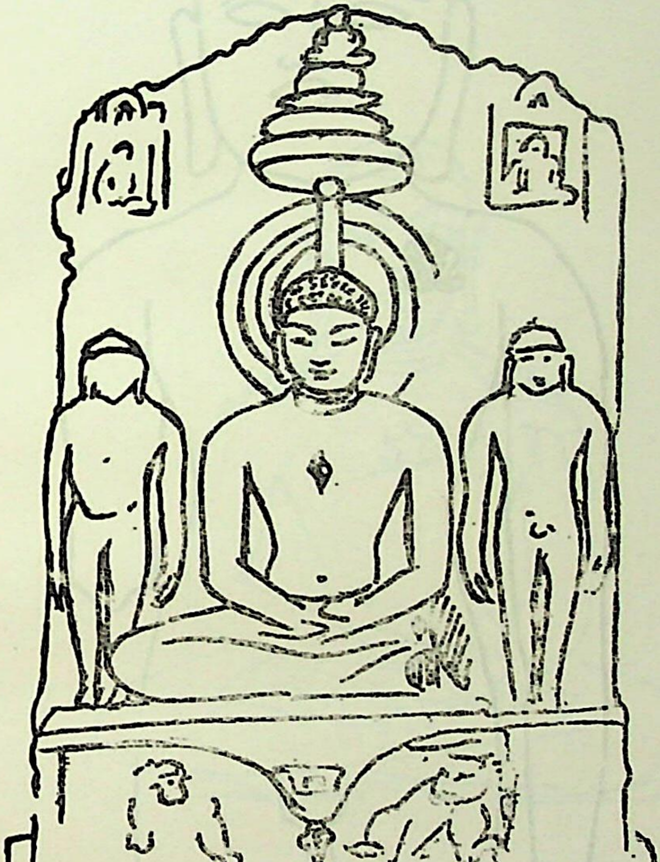
बुद्ध-प्रतिमाओं पर श्रीवत्स लांछन के सन्दर्भ में हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि बौद्ध ग्रन्थों में श्रीवत्स को केश, पद तथा पाणि-चिह्न कहा गया है, वक्ष-लक्षण नहीं। **ललितविस्तर** में राजकुमार सिद्धार्थ के केशों को श्रीवत्स जैसा विन्यस्त कहा गया है (**श्रीवत्स-स्वस्तिक-नन्द्यावर्त-वर्द्धमान संस्थानकेशश्च महाराजः सर्वार्थसिद्धिः कुमारः**)।[5] इसी प्रकार **महाव्युत्पत्ति** में '**श्रीवत्स-स्वस्तिक-नन्द्यावर्त ललितपाणिपदः**'[6] और **धर्मसंग्रह** में '**श्रीवत्स-मुक्तिक-नन्द्यावर्त ललित पाणिपदतलः**'[7] कहा गया है। यही कारण है कि भारत में पाई जाने वाली प्रायः अधिकांश बुद्ध-प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का अङ्कन नहीं पाया गया है। इस सन्दर्भ में भारतीय कला एवं

---

१. यू० पी० शाह, 'जैन ब्रोन्जेज़ : ए ब्रीफ़ सर्वे', उपरोक्त, फलक ३०।
२. वही, फलक ७०।
३. द्रष्टव्य जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर, फलक ५६।
४. द्रष्टव्य, नी० पु० जोशी, उपरोक्त, फलक ३५; यू० पी० शाह एवं एम०ए० ढाकी (सं०), उपरोक्त, लेख सं० ६, फलक ८।
५. ललितविस्तर, ७ (सं० पी० एल० वैद्य), पृ० १६५।
६. महाव्युत्पत्ति(सं०सकाई), अध्याय १८, पृ० २६ द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० ५१, टि० ५।
७. धर्मसंग्रह (सं० केनजियू कसवारा), ऑक्सफ़ोर्ड, १८८५, खण्ड १, भाग ५, पृ० २०।



चित्र सं० ९०



चित्र सं० ६१



चित्र सं० ६२



चित्र सं० ६२



चित्र सं० ६४

संस्कृत साहित्य के परम अध्येता श्रीशिवराममूर्ति का यह अभिमत विचारणीय है कि बुद्ध-प्रतिमाओं पर श्रीवत्स का लांछन वक्ष पर अङ्कित न किया जाकर उनके पदतलों पर अङ्कित किया गया है क्योंकि (संभवतः) उनका वक्षस्थल प्रायः संघाटि से ढँका रहता है।[1] परन्तु बुद्ध-प्रतिमाओं के कतिपय ऐसे उदाहरण मिले हैं जिनके वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक उत्कीर्ण है। द्वितीय शती ई० की निर्मित एक बुद्ध-प्रतिमा का धड़ भीटा (इलाहाबाद) से प्राप्त हुआ है और इलाहाबाद-संग्रहालय में प्रदर्शित है। इस प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स का लांछन स्पष्ट रूप से उसी आकार-प्रकार में उत्कीर्ण है जैसा वह जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं पर पाया जाता है (चित्र ६५)।[2] इसी प्रकार मथुरा से प्राप्त गांधार शैली में निर्मित और अभय मुद्रा में बैठी बुद्ध की एक अन्य मूर्ति के वक्ष पर भी श्रीवत्स का चिह्न उत्कीर्ण है।[3]

मध्य एशिया से कुषाणकालीन (तीसरी-चौथी शती ई०) चित्रकला में बुद्ध का एक ऐसा चित्र पाया गया है जिसके वक्ष पर संघाटि नहीं है और वक्ष के मध्य में अलंकृत श्रीवत्स कई अन्य प्रतीकों के साथ चित्रित है। नीचे की ओर एक दौड़ता हुआ अश्व है। उसके ऊपर चौकोर वेदिका में मङ्गल-कलश है। कलश से प्रस्फुटित एक सहस्रदल कमल है। इसी सहस्रदल कमल पर श्रीवत्स का प्रतीक आसीन है (चित्र ६६)।[4]

ऐसा जान पड़ता है कि जहाँ जैन तीर्थङ्करों की प्रायः सभी मूर्तियों में श्रीवत्स अपने किसी न किसी रूप में अवश्य पाया गया है वहाँ श्रीवत्सांकित बुद्ध-प्रतिमाएँ केवल गिनी-चुनी हैं।

मथुरा-संहालय की दो कुषाणकालीन बुद्ध-प्रतिमाओं में से एक के हाथ की अवशिष्ट उँगलियों के भीतरी छोर पर स्वस्तिक, श्रीवत्स एवं मीन

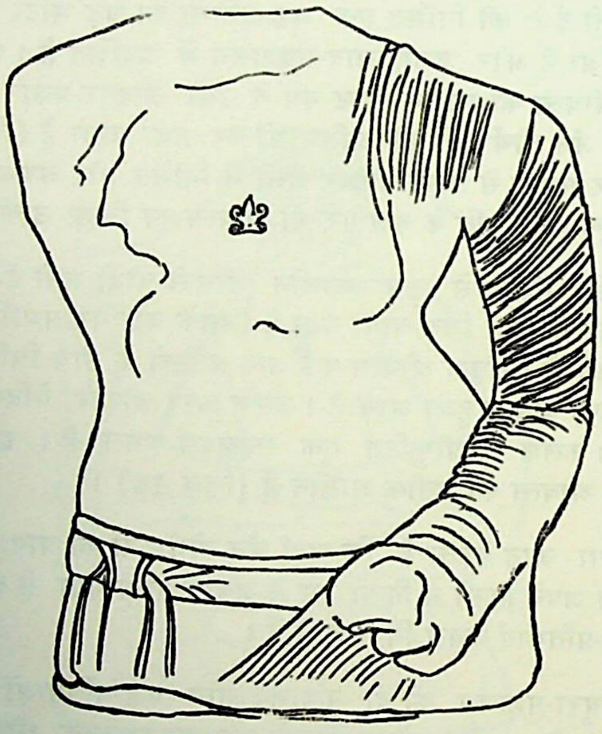
---

१. शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्न्मेण्ट म्यूज़ियम, पृ० ५८।

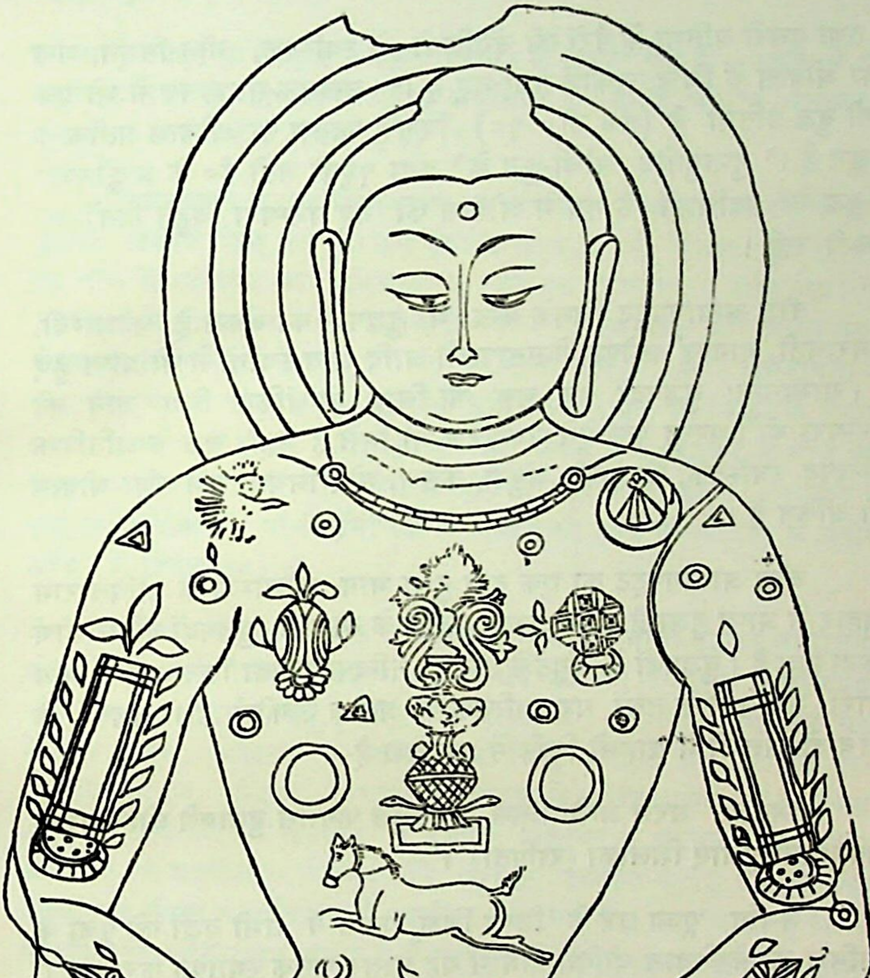
२. इलाहाबाद-संग्रहालय, सं०७१, प्रमोद चन्द्र, स्टोन स्कल्पचर्स इन दि इलाहाबाद म्यूज़ियम, फलक ३६।

३. द्रष्टव्य दि हिन्दुस्तान टाइम्स, बुद्ध जयन्ती अंक, नई दिल्ली, २४ मई १९५६, पृ० १६।

४. द्रष्टव्य शिवराममूर्ति, आर्ट ऑव इण्डिया, न्यूयार्क १९७७, चित्र ८२।



चित्र सं० ६५



चित्र सं० ६६

के तथा दूसरी प्रतिमा के पैरों की उँगलियों में स्वस्तिक, मीन-मिथुन, शंख तथा श्रीवत्स के चिह्न उत्कीर्ण पाए गए हैं।[१] लखनऊ-संग्रहालय में भी एक ऐसी बुद्ध-प्रतिमा है (सं० बी० १८) जिसके पदतल पर श्रीवत्स प्रतीक के अङ्कन हैं।[२] गुप्तयुगीन साँची-बुद्ध के[३] तथा १२वीं शती ई० के अङ्कोरवाट के बुद्ध के[४] पदचिह्नों के रूप में श्रीवत्स की यह परम्परा वहुत दिनों तक चलती रही।

वौद्ध आयागपट्ट जिनके केन्द्र में बुद्धपदों का अंकन है, कौशाम्बी, अमरावती, नागार्जुनकोण्ड, केसनापल्ली आदि अन्य स्थानों से भी प्राप्त हुए हैं। सामान्यतः बुद्धपदों पर चक्र का चिह्न ही अंकित किए जाने की परम्परा थी। परन्तु कुछ ऐसे उदाहरण भी मिले हैं जहाँ चक्र के अतिरिक्त नन्दिपद, स्वस्तिक, वैजयन्ती, अंकुश, कलश, मीन-मिथुन, वृक्ष तथा श्रीवत्स भी अंकित हैं।

वौद्ध आयागपट्ट का एक टूटा हुआ भाग कौशाम्बी के घोषिताराम विहार से प्राप्त हुआ है। इस प्रस्तर-फलक के बीच में बुद्धपदों को उत्कीर्ण किया गया है। बुद्धपदों के अँगूठे के तल पर नन्दिपद अथवा त्रिरत्न तथा अन्य चारों उँगलियों के तलों पर स्वस्तिक के प्रतीक उत्कीर्ण हैं। बुद्धपदों के नीचे दो पंक्तियों में ब्राह्मी लिपि में एक लेख है—

'भयंतस धरस अन्तेवासिस भिक्खुस फगलस बुधावसे घोषितारामे सवबुधानां पूजाए शिलाका (रापिता)।'

अर्थात् 'पूज्य धर के शिष्य भिक्षु फगल ने सभी बुद्धों की पूजा के निमित्त बुद्ध के निवास घोषिताराम में यह प्रस्तर-फलक स्थापित करवाया।'

---

१. मथुरा-संग्रहालय, सं० १८८ एवं ए २४, द्रष्टव्य डा० मिराशी अभिनन्दन ग्रंथ, नागपुर, १९६५, पृ० ३१२-१३. चित्र १, २।

२. वही, पृ० ३१३।

३. साँची-संग्रहालय सं० २७७१; बुद्ध की बैठी मूर्ति के पदतल पर चक्र आदि कतिपय अन्य प्रतीकों के साथ श्रीवत्स, द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ८१।

४. बुद्ध के पदतल पर अंकित १०८ प्रतीकों में एक श्रीवत्स, द्रष्टव्य ज़िमर, दि आर्ट ऑव इण्डियन एशिया, खण्ड २, फलक ५५६।

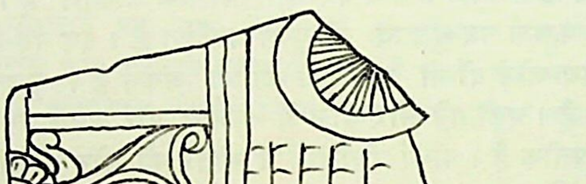
इस आयागपट्ट के किनारे अलंकृत प्रतीकों से सजाए गए हैं। फलक में एक स्वस्तिक तथा दो श्रीवत्स के प्रतीक अवशिष्ट हैं। दोनों श्रीवत्स बनावट में एक-दूसरे से भिन्न हैं (चित्र ९७)।[1]

अमरावती के एक शिलाखण्ड पर पत्रलता के चौकोर फलक के बीच बुद्धपद उत्कीर्ण किए गए हैं। इन पदों के मध्य में भी विशाल चक्र हैं, एड़ी पर बीच में नन्दिपद और अगल-बगल स्वस्तिक के प्रतीक हैं तथा चक्र और उँगलियों के बीच तीन-तीन प्रतीक हैं – बीच में स्वस्तिक और अगल-बगल वैजयन्ती। उँगलियों के तल पर भी स्वस्तिक उत्कीर्ण हैं।[2] अमरावती के एक अन्य फलक पर बुद्धपद की पूजा प्रदर्शित है। इन पद-चिह्नों के अगल-बगल हाथ जोड़े दो-दो उपासकों का भी अंकन है। बुद्धपद के बीच एक बड़ा चक्र है। एड़ी की ओर बीच में श्रीवत्स और अगल-बगल स्वस्तिक के एक-एक प्रतीक हैं। पाँचों उँगलियों में भीतर की ओर भी श्रीवत्स के प्रतीक अंकित हैं (चित्र ९८)।[3]

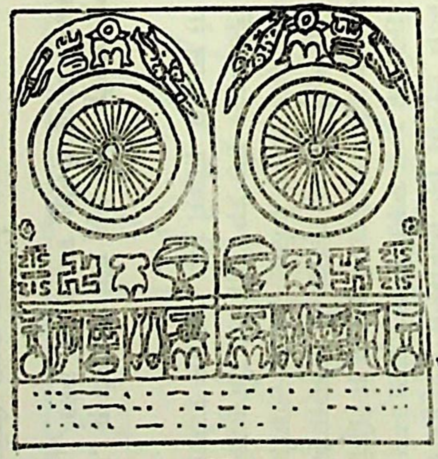
तृतीय शती ई० के एक अभिलेख से युक्त एक जोड़ी बुद्धपद नागार्जुनकोण्ड से भी मिले हैं जिनके पदतल पर बड़े-बड़े चक्र हैं। उँगलियों में नन्दिपद, मीन-मिथुन, भद्रासन, अंकुश और वृक्ष अंकित हैं। उँगलियों तथा बड़े चक्र के बीच कलश, श्रीवत्स एवं स्वस्तिक के चिह्न उत्कीर्ण हैं। एड़ी की ओर भी मीन-मिथुन, नन्दिपद, त्रिरत्न तथा अंकुश के प्रतीक उकेरे गए हैं (चित्र ९९)।[4] अभिलेख के अनुसार ये बुद्धपद श्रीलंका के थेरवाद-विभज्यवाद सम्प्रदाय के महाविहारस्वामियों की ओर से उत्कीर्ण कराए गए थे तथा प्रवेणी पर स्थित धम्मविहार में स्थापित किए गए थे। कहा जाता है कि ये महाविहारस्वामी मानव शरीर के चिह्नों का विधिवत् अध्ययन करके जन्म-कुण्डली बनाते थे।[5]

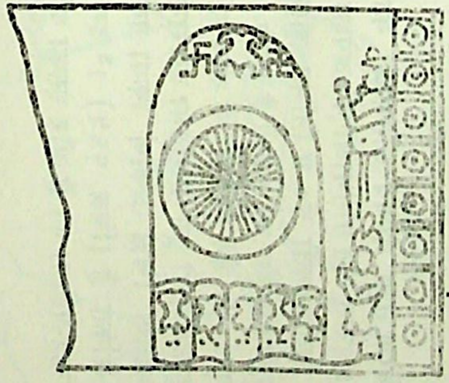
---

१. द्रष्टव्य गोवर्द्धन राय शर्मा, प्रीहिस्ट्री टु हिस्ट्री, इलाहाबाद, १९८०, पृ० ९ चित्र पृ० १० पर।
२. द्रष्टव्य जनार्दन मिश्र, प्रतीक विद्या, पटना १९५९, चित्र १५९।
३. द्रष्टव्य लुडविग बकोफ़र, अर्ली इण्डियन स्कलपचर, पेरिस १९२९, खण्ड २, फलक १२०।
४. द्रष्टव्य इण्डियन आर्कियोलॉजी १९५५-५६ ए रिव्यू, पृ० २४, फलक ३९ सी।
५. वही, पृ० २४।



चित्र सं० ६७


९९


९८

चित्र सं० ९८-९९

लगभग इसी युग के बुद्धपद गुण्टूर जिले के केसनापल्ली स्थान पर पाए गए बौद्ध स्तूप के अवशेषों में मिले हैं जिन पर चक्र, नन्दिपद, स्वस्तिक तथा मीन-मिथुन के साथ श्रीवत्स भी अंकित है।[१]

वैष्णव प्रतिमाएँ

श्रीवत्सांकित विष्णु तथा वैष्णव प्रतिमाओं का निर्माण भी कुषाण युग में होने लगा था। परन्तु जैन प्रतिमाओं की अपेक्षा इनकी संख्या नगण्य है। मथुरा से मिली द्वितीय शती ई० में निर्मित शीश-विहीन वराह की प्रतिमा सर्वाधिक प्राचीन कही जा सकती है। इस प्रतिमा के वक्ष का श्रीवत्स तत्कालीन मथुरा की जैन मूर्तियों के श्रीवत्स जैसा ही है (चित्र १००)[२]। मथुरा-संग्रहालय में ही दूसरी प्रतिमा बलराम की है जिसके सातों फनों पर एक-एक मांगलिक चिह्न उत्कीर्ण किया गया है। इनमें एक फन पर श्रीवत्स का चिह्न अंकित है (चित्र १६५)।[३] इस प्रतिमा का निर्माण काल भी वही है जो वराह-प्रतिमा का है और इसका श्रीवत्स लांछन भी उस प्रतिमा जैसा ही है।

महापुरुष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स का विस्तृत अध्ययन श्रीशिवराममूर्ति ने अपने एक लम्बे लेख (ज्योग्रैफिकल ऐण्ड क्रोनोलॉजिकल फैक्टर्स इन इण्डियन आइक्नोग्रैफी) में प्रस्तुत किया है।[४] उनके अध्ययन का निष्कर्ष है कि सबसे पहले कुषाणयुग में उत्तरी भारत (मथुरा) में जैन तीर्थङ्करों की मूर्तियों पर श्रीवत्स लांछन उत्कीर्ण किया गया, परन्तु प्रारम्भ से लेकर गुप्तयुग तक विष्णु की प्रतिमाओं पर उसे स्थान नहीं दिया गया। एकाध अपवादों को छोड़कर लगभग यही स्थिति बङ्गाल से प्राप्त विष्णु-मूर्तियों की है।[५]

---

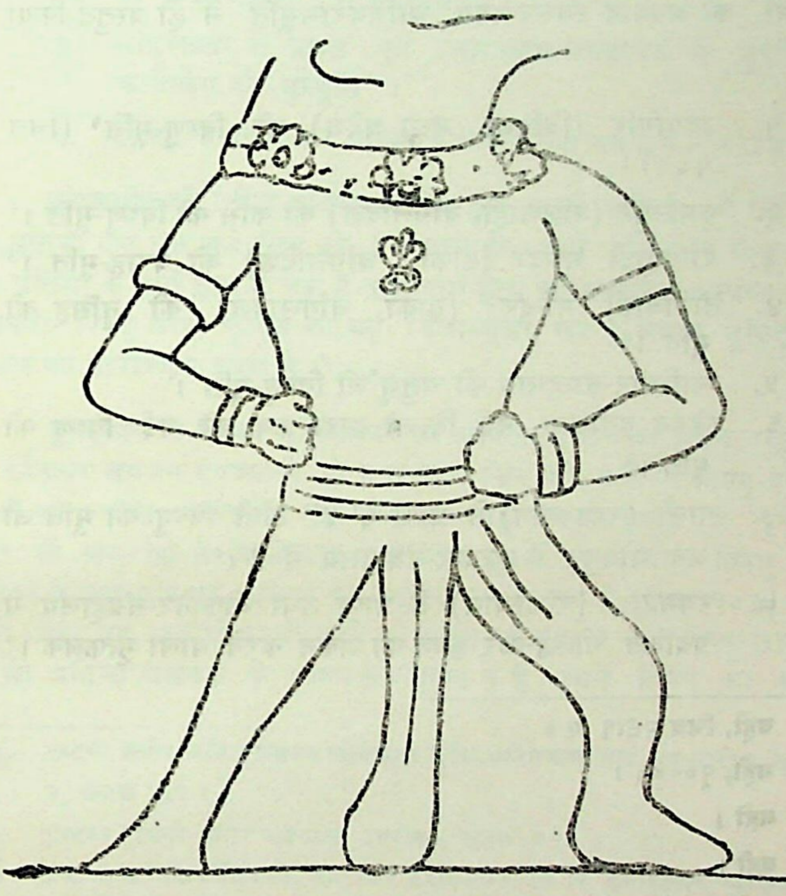
१. ए० डब्ल्यू० खान, ए मोनोग्राफ ऑन ऐन अर्ली बुद्धिस्ट स्तूप ऐट केसनापल्ली, पृ० ४५, फलक ५, द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ८०।

२. द्रष्टव्य नी० पु० जोशी, मथुरा स्कल्पचर्स, फलक १०१।

३. नी० पु० जोशी, 'ऑस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा', डा० मिराशी अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ३१४, द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त फलक ४१।

४. एन्शियण्ट इंडिया, स० ६, पृ० २१-६३।

५. वही, पृ० ४६।



चित्र सं० १००

परन्तु अब तक विष्णु तथा अन्य वैष्णव देवताओं की गुप्तयुगीन ऐसी कई प्रतिमाएँ प्राप्त हो चुकी हैं जिनके वक्ष पर श्रीवत्स का प्रतीक उत्कीर्ण है। निम्नलिखित गुप्तयुगीन प्रतिमाओं में से प्रारम्भिक चार प्रतिमाओं को अपवाद स्वरूप स्वयं श्रीशिवराममूर्ति ने ही प्रस्तुत किया है—

१. उदयगिरि (विदिशा, मध्य प्रदेश) की विष्णु-मूर्ति[१] (चित्र १६३)।
२. कुमारपुर (राजशाही, बाँगलादेश) की काँसे की विष्णु-मूर्ति।[२]
३. रानीहाटी मन्दिर (ढाका, बाँगलादेश) की वराह-मूर्ति।[३]
४. तांगिवाड़ी मन्दिर (ढाका, बाँगलादेश) की नृसिंह की मूर्ति।[४]
५. ग्वालियर-संग्रहालय की चतुर्भुजी विष्णु-मूर्ति।[५]
६. स्वेडन दूतावास, नई दिल्ली द्वारा क्रय की गई विष्णु की मूर्ति।[६]
७. पाली (राजस्थान) से प्राप्त ६'-४" ऊँची विष्णु की मूर्ति जो अब जोधपुर के सरदार-संग्रहालय में है।[७]
८. रंगमहल (राजस्थान) से प्राप्त तथा बीकानेर-संग्रहालय में प्रदर्शित गोवर्द्धनधर कृष्ण का अंकन करने वाला मृत्फलक।[८]

---

१. वही, चित्र २६।१ ए।
२. वही, पृ० ४६।
३. वही।
४. वही।
५. वही, फलक १८ डी।
६. रत्नचन्द्र अग्रवाल, 'एण्टीक्विटी ऑव श्रीवत्स मार्क ऑव विष्णु इन इण्डियन आर्ट', जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसाइटी, खण्ड ६६, भाग १-४, पृ० ४७।
७. रत्नचन्द्र अग्रवाल, 'सम विष्णु स्कल्पचर्स इन दि सर्दार म्यूजियम', जर्नल ऑव इण्डियन म्यूजियम्स, बम्बई, खण्ड ६, फलक २२, चित्र ४५, पृ० १०४-०५।
८. द्रष्टव्य ललितकला, सं० ८, १९६०, फलक २१; चित्र १।

९. हैदराबाद के राजकोष संग्रहालय में कोण्डमोटू (गुण्टूर) से प्राप्त वैष्णव फलक में वासुदेव-नृसिंह की मूर्ति ।[1]

१०. विदिशा से प्राप्त एवं ग्वालियर-संग्रहालय में रक्खी बलराम की खड़ी प्रतिमा[2] (चित्र १७६) ।

११. अहिच्छत्रा से प्राप्त एवं इलाहाबाद-संग्रहालय में सुरक्षित कार्तिकेय की मृण्मूर्ति[3] ।

१२. देवगढ़ के दशावतार मन्दिर के गजेन्द्रमोक्ष फलक में नागराज ।[4]

कोण्डमोटू की नृसिंह-प्रतिमा विचित्र है। चतुर्थ शती ई० में निर्मित यह प्रतिमा एक ऐसे खड़े सिंह की है जिसमें दो मानव हाथ जोड़ दिए गए हैं। प्रतिमा के बाएँ हाथ में चक्र है तथा दाएँ हाथ का उपकरण अस्पष्ट है। संभवतः विष्णु और नृसिंह का यह मिला-जुला रूप है अथवा नृसिंह के स्वरूप का प्रारम्भिक चरण है।[5]

मध्यकाल में वैष्णव मूर्तियों पर तो श्रीवत्स लांछन का अंकन बङ्गाल को छोड़कर लगभग देशव्यापी हो गया था। फिर भी, कतिपय विष्णु-प्रतिमाओं का उल्लेख अवांछनीय नहीं होगा। इलाहाबाद-संग्रहालय में ११वीं शती की खजुराहो से प्राप्त एक खड़ी और दूसरी गरुडासीन विष्णु की मूर्तियों के वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चतुर्दल रूप द्रष्टव्य है (चित्र १०१)।[6] काले पत्थर पर उत्कीर्ण ११वीं शती की आलिंगन मुद्रा में बैठी विष्णु-लक्ष्मी की जो प्रतिमा लखनऊ के राज्य-संग्रहालय में है उसमें विष्णु का वक्ष

---

१. द्रष्टव्य जर्नल ऑव इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट, न्यू सीरीज़, खण्ड २, फलक ५।२।

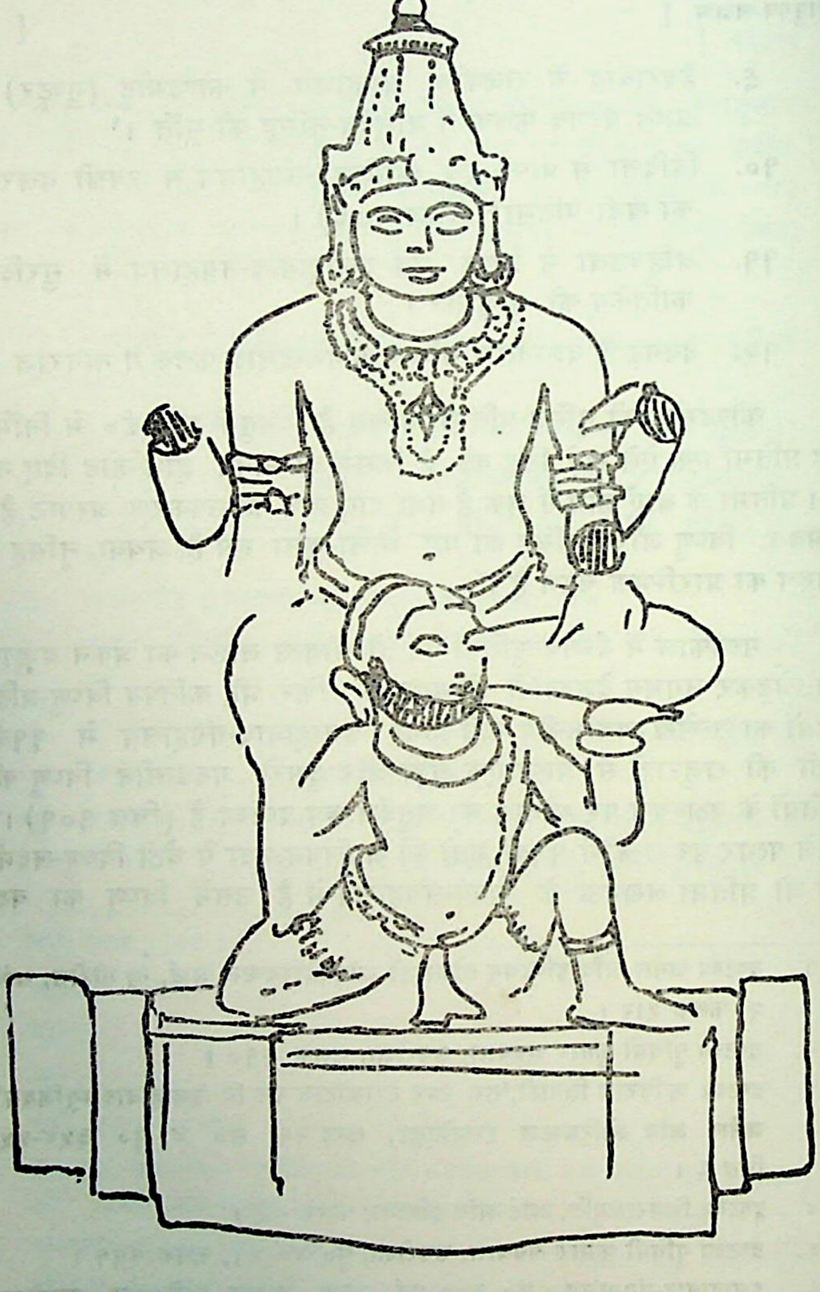
२. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक ११०।

३ द्रष्टव्य ऋषिराज त्रिपाठी,'सम रेयर टेराकोटाज़ इन दि इलाहाबाद म्यूज़ियम', जर्नल ऑव ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, खण्ड २१, सं० ४, पृ० ३५४-५५, चित्र ६।

४. द्रष्टव्य शिवराममूर्ति, आर्ट ऑव इण्डिया, फलक ८९।

५. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, पृ० ४०-४१, फलक १११।

६. इलाहाबाद-संग्रहालय, सं० ३७७ एवं २६५, द्रष्टव्य प्रमोदचन्द्र, उपरोक्त, फलक १३७, १३८।



चित्र सं० १०१

श्रीवत्सांकित है ।[1] उसी संग्रहालय में कालाकांकर (प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश) से प्राप्त अवतारों सहित विष्णु की १०वीं शती की प्रतिमा पर भी श्रीवत्स उत्कीर्ण है (चित्र १८६) ।[2] स्थानक मुद्रा में हरि-हर की एक प्रतिमा इस लिए उल्लेखनीय है कि इसके वक्ष का आधा बाँया भाग श्रीवत्स के तथा आधा दाँया भाग जटा के रूप में उत्कीर्ण है (चित्र १९४) ।[3] सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त एक विष्णु की मूर्ति पर भी श्रीवत्स का प्रतीक उत्कीर्ण पाया गया है ।[4]

इस काल में विष्णु के अतिरिक्त अन्य वैष्णव तथा शैव देवताओं के वक्ष को भी श्रीवत्स लांछन से सुशोभित किया गया है। इनमें वराह, कृष्ण, वासुदेव, नृसिंह, बलराम, सूर्य, ब्रह्मा, योगनारायण, कार्तिकेय, शिव, भैरव, वायु, हनुमान, इन्द्र आदि उल्लेखनीय हैं ।

मथुरा और रानीहाट की वराह, मथुरा तथा विदिशा की बलराम, रंगमहल की गोवर्द्धनधर कृष्ण, हैदराबाद की वासुदेव, अहिच्छत्रा की कार्तिकेय तथा हैदराबाद, तांगिवाड़ी और कोण्डमोटू की नृसिंह प्रतिमाओं का उल्लेख पहले किया जा चुका है । इसके अतिरिक्त गोरखपुर तथा इलाहाबाद से मिली सूर्य-प्रतिमाओं पर भी श्रीवत्स का लांछन उत्कीर्ण है ।[5] इलाहाबाद-संग्रहालय में खजुराहो से प्राप्त आदिवराह[6] एवं नृसिंह[7] की मूर्तियों पर भी यह प्रतीक अंकित पाया गया है। श्रीवत्सांकित नृसिंह की एक अष्टभुजी मूर्ति लखनऊ राज्य-संग्रहालय में है ।[8] खजुराहो के पार्श्वनाथ मन्दिर से मिली ११वीं शती की ब्रह्मा[9] और मथुरा-संग्रहालय की योग-

---

१. राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० जी-२२५ ।

२. वही, सं० ४२-१८९ ।

३. वही, सं० एच-११९ ।

४. द्रष्टव्य कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, उपरोक्त, फलक ७० ।

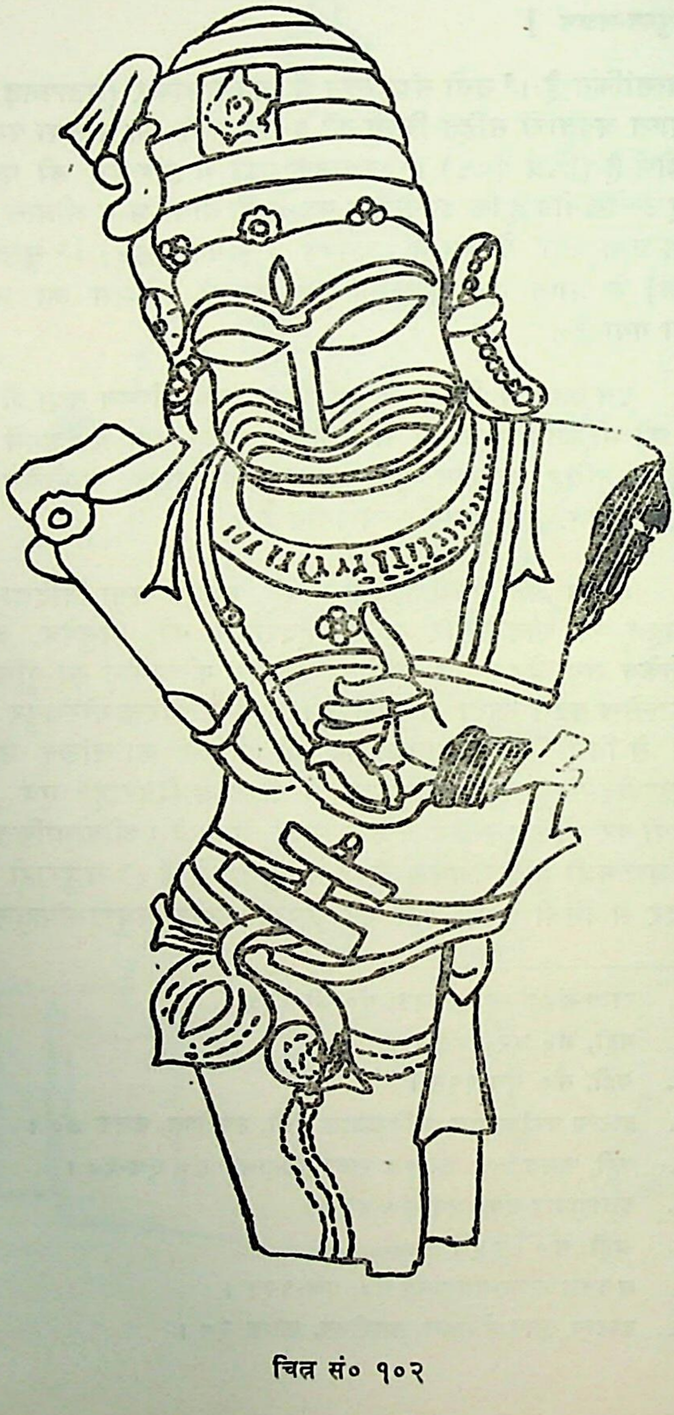
५. वही, फलक ७१; लखनऊ राज्य-संग्रहालय सं० एच-३० ।

६. इलाहाबाद-संग्रहालय सं० ४३२ ।

७. वही, सं० ७८५ ।

८. लखनऊ राज्य-संग्रहालय सं० एच-१२५ ।

९. द्रष्टव्य एलन डेनियल, उपरोक्त, फलक २८ ।



चित्र सं० १०२

नारायण[1] प्रतिमाएँ चतुर्दलीय पुष्पाकृत श्रीवत्स से अलंकृत हैं। राजघाट (वाराणसी) से प्राप्त ऐरावत के पृष्ठ भाग पर खड़ी इन्द्र-इन्द्राणी की मध्य-युगीन मूर्ति में भी इन्द्र का वक्ष श्रीवत्स से लांछित है।[2] इलाहाबाद क्षेत्र से मिली १२वीं शती की एक हनुमान प्रतिमा के वक्ष पर भी गोल चतुर्दल से श्रीवत्स को रूपायित किया गया है (चित्र १०२)।[3] उसी काल में निर्मित भीटा से मिली वायु की वह प्रतिमा भी इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है जो इलाहाबाद-संग्रहालय में प्रदर्शित है।[4] गढ़वा (इलाहाबाद) से मिली शिव की मूर्तियों के वक्ष भी श्रीवत्स से अलंकृत हैं।[5] जमसोत (इलाहाबाद) से प्राप्त १२वीं शती की भैरव-प्रतिमा भी श्रीवत्सांकित है।[6] कुम्भलगढ़ (राजस्थान) से १५वीं शती ई० की ६½ फिट ऊँची तथा २½ फिट चौड़ी श्वेत पत्थर की एक अद्वितीय कुबेर-प्रतिमा के वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न उत्कीर्ण है।[7]

मध्य काल में श्रीवत्स लांछन में प्रतिमा-लक्षण तथा पौराणिक आख्यान का वह महत्त्व नहीं रह गया था जो प्रारम्भ में केवल महापुरुष-लक्षण का था। ऐसा जान पड़ता है कि श्रीवत्स अब मात्र एक अलंकरण रह गया था। इसीलिए इसका अंकन विभिन्न देवताओं के अतिरिक्त द्वार-पाल एवं नागराज[8] जैसे साधारण व्यक्तियों की मूर्तियों पर भी किया जाने लगा था।

---

१. द्रष्टव्य एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ६, फलक १२ ए।

२. राज्य-संग्रहालय, लखनऊ, सं० एच-२६।

३. द्रष्टव्य प्रमोदचन्द्र, उपरोक्त, फलक ८५।

४. इलाहाबाद-संग्रहालय सं० ४४२।

५. वही, सं० ६४२।

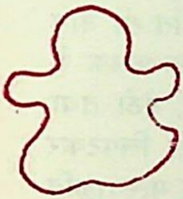
६. वही, सं० १००६।

७. द्रष्टव्य, रत्नचन्द्र अग्रवाल, 'कुंभलगढ़ की कुबेर-प्रतिमा', वरदा, वर्ष ७, अंक ७, पृ० ५; म० प्र० शर्मा, 'यक्षराज धनद कुबेर', मरुभारती, वर्ष ३०, अंक १, खण्ड २, पृ० ६८।

८. शिवराममूर्ति, आर्ट ऑव इण्डिया, फलक ८९।

अद्यप्रभृति श्रीवत्सः शूलांकोऽयं भवत्वयं।
मम पाण्यंकितश्चापि श्रीकण्ठस्त्वं भविष्यसि ।।

महाभारत, शान्तिपर्व, ३३०।६५



श्रीवत्स प्रतीक का उद्‌भव

भारतीय कला के इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में कुछ विद्वानों की यह सम्मति स्वीकार नहीं की जा सकती है कि श्रीवत्स मूलतः चतुर्दलीय पुष्प की आकृति का रहा होगा ।[1] वस्तुतः चतुर्दलीय पुष्प तो उसकी अंतिम परिणति है । श्रीवत्स की प्राथमिक आकृति से हमें ऐसा आभास होता है कि मूलतः यह प्रतीक मानव-आकृति का रहा होगा । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि श्रीवत्स प्रतीक के प्राथमिक स्वरूप की प्रेरणा मानव की आकृति से मिली होगी । शुंगयुगीन श्रीवत्स प्रतीक को ध्यान से देखने पर ऐसा लगता है कि यह पालथी मारकर बैठा तथा अपने दोनों हाथों से अपने गले अथवा कंधों को छूता हुआ मानव हो । प्रतीक की निचली गोलाइयाँ पैरों, ऊपरी दो गोलाइयाँ हाथों तथा ऊपरी मध्य की नोक मुख के स्थान पर ही निर्मित की गई होगी । अत्यन्त प्राचीन काल

१. पी०वी० बापट, 'फोर ऑस्पिशस थिंग्स ऑव दि बुद्धिस्ट्स', इण्डिका, खण्ड १८, पृ० ४२ ।

में वनाई गई मानव-मूर्तियाँ श्रीवत्स जैसे आकार की होती थीं, इसकी पुष्टि गंगा-घाटी से मिले मानवाकार ताम्र आकृतियों (एन्थ्रॉपोमार्फिक उपकरणों)[1] तथा ३०००-२००० ई० पू० में निर्मित क्रीट की एक प्रतीक मूर्ति[2] से हो जाती है (चित्र ११६, १२४)।

यह निष्कर्ष, कि श्रीवत्स प्रतीक की उद्भावना मानव-मूर्ति से हुई है, साँची, सारनाथ, कौशाम्बी तथा मथुरा के उत्कीर्ण शिल्प से तथा दक्षिण भारत की कतिपय मूर्तियों से सिद्ध हो जाता है। साँची के स्तूप सं० २ के एक वेदिका-स्तम्भ के ऊपरी अर्द्धचक्र-फलक में अपने दोनों हाथों में पद्मगुच्छ पकड़े हुए क्रीड़ा की मुद्रा में एक मानव-मूर्ति उत्कीर्ण है जिसके हाथों एवं पैरों की मुद्राओं से वह श्रीवत्स की प्रतिकृति सी जान पड़ती है (चित्र १०३)।[3] सारनाथ वेदिका-स्तम्भ के एक चक्र-फलक में ऐसी ही मानव-मूर्ति अङ्कित की गई है। पालथी मारकर बैठी तथा किरीटधारिणी इस आकृति की पीठ से आकर कंधों एवं वाहों से लिपटकर और पीछे की ओर फहराता हुआ उत्तरीय है जिसके दोनों छोर मत्स्याकृति जैसे हैं (चित्र १०४)।[4] कौशाम्वी से प्राप्त तोरण की वड़ेरी के एक खण्डित भाग पर उत्कीर्ण मानव-मूर्ति ने अपने दोनों पैरों को हाथों से पकड़ कर ऊपर उठा लिया है। चौकोर फलक में उत्कीर्ण इस मूर्ति के पैरों के छोर भी मत्स्य की आकृति जैसे हैं (चित्र १०५)।[5] मथुरा के निकट माट गाँव के टोकरी टीले से प्राप्त शक-क्षत्रप चष्टन की एक मूर्ति की कमर में चौकोर तथा गोल फुल्लों की वनी एक पेटी (कमरवन्ध) है। चौकोर फुल्लों में सिंह-सवार तथा गोल फुल्लों में वैसी ही मानव-आकृतियाँ हैं जैसी सारनाथ तथा कौशाम्वी से उपलव्ध हुई हैं। मथुरा की इन मानव-आकृतियों के

---

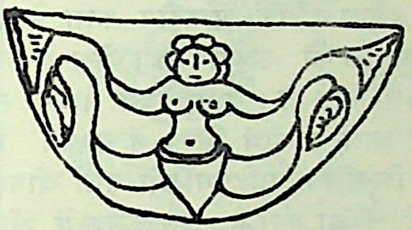
१. द्रष्टव्य हँसमुख धीरज सांकलिया, प्री-हिस्ट्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, बम्बई १९६२, चित्र ११०; एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ७, चित्र २१।, ५, ८, पृ० २३। ह्वीलर, अर्ली इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, चित्र २६।१।

२. द्रष्टव्य बेटेंनिक चार्ल्स तथा वीयर्ट, दि ह्यूमन फ़िगर, नीदरलैण्ड्स, फलक ३१।

३. स्तूप सं० २, स्तंभ सं० ७५ ए, द्रष्टव्य मार्शल तथा अन्य, मान्यूमेण्ट्स ऑव साँची, खण्ड ३, फलक ८८।

४. द्रष्टव्य वासुदेव शरण अग्रवाल, सारनाथ, फलक ४ का तीसरा स्तंभ।

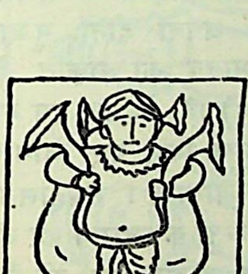
५. द्रष्टव्य प्रमोदचन्द्र, उपरोक्त, फलक ३० ए।



१०३



१०४



१०५



१०६

चित्र सं० १०३—१०६

पैर दो बार गोल-गोल कुण्डलियों में घूमने के बाद हाथों में पकड़े हुए दिखाए गए हैं (चित्र १०६) ।[1] इस प्रकार इन मानव-मूर्तियों के हाथ पैर की मुद्राएँ उन्हें श्रीवत्स प्रतीक का आकार प्रदान करती हैं और हमें यह मानने के लिए विवश सा करती हैं कि श्रीवत्स प्रतीक की उद्भावना संभवतः मानव-आकृति से हुई होगी ।

इस तथ्य के कुछ सबल प्रमाण दक्षिण भारतीय कला से प्राप्त हुए हैं जिनमें शुंगयुगीन श्रीवत्स प्रतीक की ऊपरी मध्य नोक के स्थान पर मानव-मुख की उद्भावना कर दी गई है। पेडुमुडियम नामक स्थान से प्राप्त एक चौकोर प्रस्तर-फलक वाले उत्कीर्ण शिल्प में गणेश, चतुर्मुखी ब्रह्मा, नृसिंह, विष्णु, लक्ष्मी, शिवलिंग, महिषमर्दिनी तथा श्रीवत्स आदि देवों को एक पंक्ति में उत्कीर्ण किया गया है। इस फलक में श्रीवत्स का स्वरूप यद्यपि प्राथमिक है परन्तु ऊपरी मध्य नोक के स्थान पर ऊँची शिरोभूषा से अलंकृत मानव-मुख बना दिया गया है (चित्र १०७) ।[2]

मद्रास के राजकीय संग्रहालय में कावेरिपक्कम से प्राप्त एक ऐसा मूर्ति-शिल्प है जिसमें ठीक श्रीवत्स प्रतीक जैसी आकृति में पालथी मारकर एक विकसित कमलासन पर बैठी तथा अपनी दोनों भुजाओं को गोलाई से उठाकर कंधों को छूती हुई एक मानव की आकृति है जिसके अगल-बगल दो दिग्गज खड़े हैं (चित्र १०८) ।[3] वे गज इस मानव को उसी प्रकार अभिसिंचित करने के लिए उत्कीर्ण किए गए जान पड़ते हैं जैसे गज-लक्ष्मी की मूर्तियों में उन्हें उकेरा जाता है। संग्रहालय में इस मूर्ति का शीर्षक 'श्री-लक्ष्मी' दिया गया है। परन्तु कमलासन पर बैठी और गजाभिषिक्ता यह मानव-मूर्ति महिला की न होकर पुरुष की है । इसीलिए इसे गज-लक्ष्मी या श्रीलक्ष्मी कहना तर्क-संगत नहीं जान पड़ता है। डा० जगदीश गुप्त का यह विचार वस्तुतः ध्यान देने योग्य है कि यह

---

१. द्रष्टव्य नी० पु० जोशी, उपरोक्त, फलक ३२ । फलक ८५ के निचले भाग में भी लगभग ऐसा ही अंकन है ।

२. द्रष्टव्य एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ६, फलक १५ ए ।

३. द्रष्टव्य जर्नल ऑव यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, खण्ड १४, भाग १ (१६४१), फलक १।१ ।



चित्र सं० १०७

मूर्ति लक्ष्मी की न होकर श्रीवत्स की है।[१] श्रीवत्स का गजाभिषेक कोई आश्चर्यजनक बात नहीं कही जा सकती है। इस सन्दर्भ में एक ऐसे मूर्ति-शिल्प का उल्लेख प्रासंगिक है जिसमें अगल-बगल खड़े गज बीच में स्थापित श्रीवत्स प्रतीक का अभिषेक करते हुए दिखाए गए हैं। इस मूर्ति-शिल्प का फोटो मुझे तिलकधारी कालेज जौनपुर के प्रवक्ता एवं मेरे मित्र डा० ओम् प्रकाश सिंह ने दिखलाया था।

तञ्जौर जिले के एनाडि नामक स्थान से मिलने वाली एक और वैसी ही लघु कांस्य-प्रतिमा मद्रास के राजकीय संग्रहालय में है जिसमें बैठी हुई मूर्ति के हाथ-पैर अन्दर की ओर गोल घूमे हुए हैं तथा मानव-मुखी इस प्रतिमा के शीश पर भव्य एवं ऊँचा किरीट है। इस प्रतिमा के हाथों वाली गोलाइयों में सूँड़ उठाए हस्तिमुखों का अङ्कन द्रष्टव्य है (चित्र १०९)।[२]

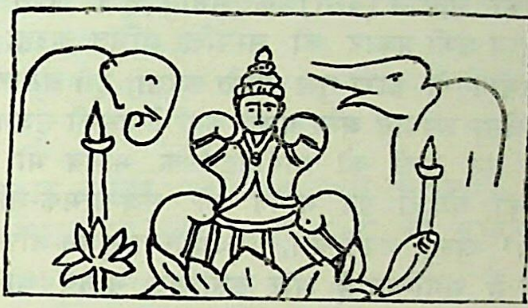
उपरोक्त तीनों मूर्तियों को श्रीशिवराममूर्ति ने 'श्रीलक्ष्मी' का अर्द्धप्रतीकात्मक रूप माना है।[३] परन्तु इन मूर्तियों में ऐसा कोई संकेत नहीं है जिसके आधार पर इन्हें नारी-मूर्तियाँ समझा जा सके। ध्यान रहे कि एक भी ऐसी नारी-मूर्ति नहीं पाई गई है जिसके वक्ष पर श्रीवत्स का लांछन उत्कीर्ण हो। अस्तु, इन पुरुषाकृतियों को श्रीवत्स का ही अङ्कन मानना तर्क-संगत जान पड़ता है और लगभग ९वीं शती ई० की इन मूर्तियों को उपरोक्त साँची, सारनाथ, कौशाम्बी और मथुरा के श्रीवत्स जैसे मानवी स्वरूपों की ही अगली कड़ी कहा जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष भी स्वतः निकलता है कि श्रीवत्स प्रतीक की दो परम्पराएँ समान रूप से साथ-साथ चलती रहीं जिनमें एक का स्वरूप अर्द्धप्रतीकात्मक तथा दूसरे का पूर्ण प्रतीकात्मक था।

---

१. पारस्परिक वार्तालाप।

२. द्रष्टव्य जर्नल ऑव यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, खण्ड १४, भाग १, फलक १४।

३. शिवराममूर्ति, 'ज्योग्रैफ़िकल ऐण्ड क्रोनोलॉजिकल फ़ैक्टर्स इन इण्डियन आइक्नोग्रैफी', एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ६, पृ० ४५-४६।



१०८



१०९

चित्र सं० १०८—१०९

यदि 'श्रीवत्स' शब्द के भाषागत अर्थ की ओर हम ध्यान दें तो इस प्रतीक की उद्भावना की गुत्थी सरलता से सुलझाई जा सकती है। 'श्रीवत्स' दो शब्दों से मिलकर बना है—'श्री' तथा 'वत्स'। 'श्री' सुख, सम्पत्ति एवं सृजन का प्रतीक है। 'श्री' की कृपा का पात्र होने के नाते मानव उसकी सन्तान (वत्स) के समान है। अपने पुरुषार्थ एवं परिश्रम से मनुष्य सभी प्रकार की सम्पत्ति अर्जित करता है और इस प्रकार उसके उपभोग के द्वारा सुख प्राप्त करता है। संसार की समस्त सृष्टि में मानव जैसा रूपवान अन्य प्राणी कहाँ ? उसकी सृजन-शक्ति किससे छिपी है ? अपने इन गुणों को प्रागैतिहासिक मानव भी जानता था। सिन्धु-सभ्यता की मोहरों पर मानव की सृजनात्मक-शक्ति के अंकन पाए भी गए हैं।[1] अस्तु, अपने श्रम, सौन्दर्य तथा सृजन-शक्ति से मानव भी 'श्री' के गुणों से समन्वित है और इसीलिए मानव 'श्री-वत्स' कहलाने योग्य है।

इस निष्कर्ष की सम्पुष्टि साँची-शिल्प के दो फलकों से स्वयमेव हो जाती है। स्तूप सं० २ के एक वेदिका-स्तम्भ पर मकर-मुख से निकलती तथा चार घेरे बनाने वाली पद्मलता उत्कीर्ण है। तीसरे घेरे में अपने दोनों हाथों में पद्मगुच्छ पकड़े हुए तथा कमलगट्टे पर बैठी हुई लक्ष्मी का अंकन है। इस पद्मलता के शीर्ष पर श्रीवत्स का एक प्रतीक प्रतिष्ठित है (चित्र ११०)।[2] वस्तुतः इस फलक में लक्ष्मी तथा उसके प्रतीक श्रीवत्स दोनों का एक अंकन है जो उन दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। इसी प्रकार एक अन्य वेदिका-स्तम्भ के चक्र-फलक में कच्छप-मुख से निःसृत पद्मगुच्छ का शीर्ष श्रीवत्स के प्रतीक से अलंकृत है (चित्र १११)।[3]

---

१. द्रष्टव्य नीलकण्ठ शास्त्री, सिन्धु-सभ्यता का आदि केन्द्रः हड़प्पा, दिल्ली १९५९, फलक १७ ङ; किरण कुमार थपल्याल एवं संकठा प्रसाद शुक्ल, सिन्धु-सभ्यता, लखनऊ १९७५, पृ० १३७; सतीश चन्द्र काला, मोहेंजोदड़ो तथा सिन्धु-सभ्यता, वाराणसी, वि० सं० २००८, पृ० ८९।

२. द्रष्टव्य मार्शल एवं अन्य, उपरोक्त, फलक ९१।

३. वही, फलक ८४।

कच्छप एवं पद्म अष्टनिधियों में गिने जाते हैं—

तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ,
मुकुन्दनीलौ नन्दश्च शंखश्चाष्टयो निधिः ।
(मार्कण्डेय पुराण, अध्याय ६८, श्लोक ५)[1]

अष्टनिधियां पद्मिनी विद्या की आधार हैं और लक्ष्मी पद्मिनी विद्या की अधिष्ठात्री देवी है—

पद्मिनी नाम या विद्या लक्ष्मीस्तस्याधिदेवता ।
(मार्कण्डेय पुराण, ६८।४)[2]

इस प्रकार कच्छप एवं पद्म लक्ष्मी के प्रतीक हैं और उसके सानिध्य में श्रीवत्स भी निश्चय ही लक्ष्मी का सम्बन्धी है।

लक्ष्मी और श्रीवत्स का एक साथ अंकन साँची के अतिरिक्त खण्डगिरि की अनन्तगुम्फा में तथा अमरावती की चैत्य-खिड़की में प्राप्त हुआ है (चित्र ७६)। लक्ष्मी के पार्श्व में अथवा उसके संसर्ग में श्रीवत्स का अंकन पञ्चाल, कुणिन्द, औदुम्वर, मथुरा तथा अयोध्या के सिक्कों पर भी उपलब्ध हुआ है जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है। अस्तु, श्रीवत्स निःसन्दिग्ध रूप से लक्ष्मी का प्रतीक है।

श्रीवत्स को लक्ष्मी का प्रतीक सिद्ध करने वाला एक उदाहरण हमें दक्षिण भारतीय एक अभिलेख में मिला है। महाराज वाणरस के ८वीं शती ई० के एक कन्नड़ अभिलेख में ऊपर एक पूर्ण विकसित कमल तथा अभिलेख के अन्त में एक आसन पर श्रीवत्स का प्रतीक उत्कीर्ण है।[3] 'ॐ स्वस्ति श्री' से प्रारम्भ होने वाले इस अभिलेख में कमल तथा श्रीवत्स निश्चय ही लक्ष्मी के प्रतीक के रूप में उकेरे गए हैं। कमल तो लक्ष्मी का आसन तथा लीला-पुष्प है ही। इसलिए कमल के संसर्ग में अंकित श्रीवत्स निश्चय ही लक्ष्मी का प्रतीक है।

---

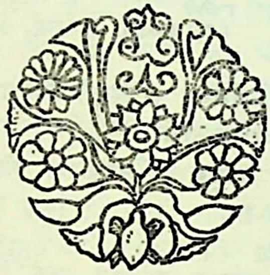
१. पं० बलदेव प्रसाद एवं पं० मंगला प्रसाद, मार्कण्डेयपुराण सटीक, लखनऊ १८८४, पृ० ३२३।

२. वही।

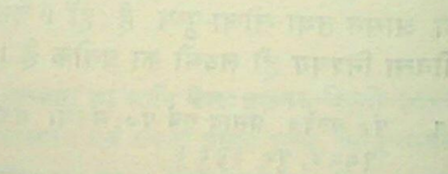
३. एनुअल रिपोर्ट ऑव साउथ इण्डियन एपीग्रैफी—१९३१-३२, मद्रास १९३५, सं० १९६, फलक १।



११०



१११



११२

चित्र सं० ११०—११२

श्रीवत्स लक्ष्मी का ही प्रतीक है, यह तथ्य मथुरा से मिले शक क्षत्रप शोडाष (प्रथम शती ई० पू०) के एक अभिलेख से भी प्रकट होता है जिसके प्रारंभ में श्रीवत्स का एक अत्यन्त अलंकृत प्रतीक उत्कीर्ण है तथा जिसमें महाक्षत्रप शोडाष के कोषाध्यक्ष मूलवसु की पत्नी कौशिकी द्वारा एक सरोवर, एक उद्यान, एक सभा, एक कुआँ तथा एक स्तम्भ के निर्मित किए जाने और श्रीलक्ष्मी की प्रतिमा वाले एक शिलापट के स्थापित किए जाने का उल्लेख है (पुष्करणी आरामो सभा उद्यानो स्तम्भो श्रिये प्रतिमाए शिलापटो च)।[1]

इस तथ्य की सम्पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि विष्णु के वक्ष पर लक्ष्मी तथा श्रीवत्स दोनों की स्थिति समान रूप से मानी जाती है। विष्णु, लक्ष्मी तथा श्रीवत्स के पारस्परिक सम्पर्क पर प्रकाश डालने वाले ग्रन्थ **श्रीप्रश्नसंहिता** की ओर हमारा ध्यान पृथिवी कुमार अग्रवाल ने आकर्षित किया है।[2] **श्रीप्रश्नसंहिता** से स्पष्ट हो जाता है कि विष्णु का वक्ष-लांछन श्रीवत्स है। सागर से उद्भूत होकर लक्ष्मी ने उस पर अपना वास-स्थान बना लिया—

समारुह्य ततो देवी मत्श्रीवत्समुपागमः।[3]

वस्तुतः विष्णु की पवित्र वक्ष-भूषा श्रीवत्स पर अधिष्ठित एवं कोटि विद्युज्ज्योति से प्रभासित लक्ष्मी विष्णु का सान्निध्य प्राप्त करती है और इसीलिए देवी को 'श्रीवत्सवासिनी'[4] तथा 'श्रीवत्सेऽन्तरहिता'[5] कहा गया है। श्रीवत्स से बाहर आती लक्ष्मी से भी यही भाव प्रकट होते हैं।[6]

---

१. डॉ० रमेशचन्द्र शर्मा, 'निउली डिस्कवर्ड इन्स्क्रिप्शन ऑव दि रेन ऑव महाक्षत्रप शोडाष फ्रॉम मथुरा', कल्चरल कण्टूर्स ऑव इण्डिया (डॉ० सत्य प्रकाश अभिनन्दन ग्रंथ), नई दिल्ली १९८१, पृ० ६४-६६, फलक १६।

२. श्री-प्रश्न संहिता, तिरुपति संस्करण, १९६९।

३. वही, २५।३५।

४. वही, २६।५।

५. वही, २।१७।

६. वही, २४।७७, श्रीवत्सादागतं लक्ष्मीम्।

त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी
संध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ।
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने
आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तफलदायिनी ।।

विष्णुपुराण, १।६।११८-१६



श्रीवत्स प्रतीक की प्राचीनता

श्रीवत्स प्रतीक का प्राचीनतम अङ्कन अव तक कला-समीक्षकों की दृष्टि में जो आया है वह भरहुत, साँची, सारनाथ आदि के शुङ्गयुगीन उत्कीर्ण शिल्प में उपलब्ध है। परन्तु भारतीय कला में जिन मांगलिक चिह्नों को सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया गया है उनमें श्रीवत्स के साथ-साथ स्वस्तिक, चक्र, त्रिरत्न, वेदिका, मीन-मिथुन, भद्रकलश आदि मुख्य हैं, और इनमें से अधिकांश प्रतीकों का अङ्कन सिन्धु-सभ्यता की मोहरों एवं मृद्‌भाण्डों[1] पर तथा भारत की प्रागैतिहासिक चित्रकला[2] में पाया भी जा चुका है। इस आधार पर हम श्रीवत्स की प्राचीनता को

१. द्रष्टव्य नीलकण्ठ शास्त्री, उपरोक्त, फलक २० ज$_1$, २१ घ$_1$, २३ छ, ज, झ, ञ, ड और ढ (स्वस्तिक), २३ ट, ३१ क, ख, ग, घ, ङ, च और छ (चक्र), ३१ ख और ङ (वेदिका में वृक्ष) तथा २५ च (मीन), आदि।

२. द्रष्टव्य जगदीश गुप्त, प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली १९६७, पूजा प्रतीक, फलक ९ एवं २१ (स्वस्तिक) तथा १८ एवं २१ (चक्र)।

भी यदि प्रागैतिहासिक स्वीकार कर लें तो कोई अत्युक्ति न होगी। श्रीशिवराममूर्ति के अनुसार तो श्रीवत्स का अंकन प्राक्-मौर्ययुग की मृण्मूर्तियों पर यहाँ तक कि मोहेनजोदड़ो की मोहरों तक पर प्राप्त होता है।[1] इस प्रकार श्रीवत्स प्राचीनतम भारतीय कला-प्रतीकों में से एक है।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने तक्षशिला, मथुरा, कौशाम्वी, अहिच्छत्रा, भीटा, राजघाट तथा पाटलिपुत्र से प्राप्त कतिपय अश्मचक्रों पर उत्कीर्ण नारी-मूर्तियों को 'श्री मातृदेवी' माना है तथा इसीलिए उन्हें 'श्री-चक्र' की संज्ञा दी है (चित्र ११२)।[2] राजघाट से पाए जाने वाले तथा लखनऊ के राज्य-संग्रहालय में संग्रहीत ऐसे ही एक श्रीचक्र के मध्य-छिद्र की दीवालों पर पाँच श्रीवत्स तथा पाँच मुचकुन्द के प्रतीकों को उत्कीर्ण किया गया है।[3] डॉ० अग्रवाल ने इन श्रीचक्रों के निर्माण का काल लगभग ६००-३०० ई० पू० माना है[4] और इस आधार पर श्रीवत्स का यह अंकन निश्चित रूप से शुङ्गयुग से पूर्व मौर्य अथवा प्राङ्मौर्य युग का ठहरता है।

'मदर गॉडेस' या मातृदेवी की मृण्मूर्तियों की परम्परा बड़ी पुरानी है। सिन्धु-सभ्यता तथा इसके पूर्व की सभ्यताओं में मातृदेवी की असंख्य मृण्मूर्तियाँ पाई गई हैं। उनके उभरे उरोज मातृत्व के परिचायक हैं। मोहें-जोदड़ो तथा लौरयानन्दनगढ़ से ऐसी कुछ मृण्मूर्तियाँ पाई गई हैं जिनके वक्ष पर बालक जैसी आकृति चिपकी पाई गई है (चित्र ११३)। इस आकृति को विद्वान् श्रीवत्स मानते हैं।[5] मौर्य-शुङ्गयुग में निर्मित छोटी-छोटी मृण्मूर्तियाँ भी पाई गई हैं जिन्हें ताराकार मृण्मूर्तियाँ (स्टार शेप्ड टेराकोटा फ़िगरीन्स) कहा जाता है।[6] इन मृण्मूर्तियों को ताराकार (स्टार-

---

१. शिवराममूर्ति, अमरावती स्कल्पचर्स इन दि मद्रास गवर्न्मेण्ट म्यूज़ियम, पृ० ८३।
२. वासुदेव शरण अग्रवाल, स्टडीज़ इन इण्डियन आर्ट, पृ० १४।
३. वासुदेव शरण अग्रवाल, इण्डियन आर्ट, वाराणसी १९६५, पृ० ७८।
४. वही, पृ० ७७-८०; स्टडीज़ इन इण्डियन आर्ट, पृ० १४।
५. द्रष्टव्य पृथिवी कुमार अग्रवाल, उपरोक्त, फलक १, २।
६. मैन, सं० १५८-६० (सितम्बर १९५५), पृ० १५९।

शेप्ड) इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनमें तारे (स्टार) की भाँति पाँच उभार पाए जाते हैं—दो हाथ, दो पैर और एक मुख। इनमें अधिकांश मृण्मूर्तियाँ निश्चित रूप से नारी-मूर्तियाँ हैं, क्योंकि उनके स्तन उभरे बनाये गए हैं। परन्तु अन्य कुछ मूर्तियाँ ऐसी भी हैं जिन्हें नारी-मूर्तियाँ कहना तर्क-संगत नहीं, क्योंकि उनके स्तन उभरे नहीं हैं। ऐसी स्थिति में उन पुरुष-मृण्मूर्तियों की पहचान श्रीवत्स से करना नितांत तर्कहीन नहीं कहा जा सकता है (चित्र ११४-११७)।

उत्तर प्रदेश में गंगा-घाटी में शिवराजपुर (कानपुर), फतेहगढ़ तथा विसौली (वदायूँ) से १२ इञ्च से लेकर १६ इञ्च तक की लम्बाई तथा ११ इञ्च से लेकर १५ इञ्च तक की चौड़ाई के ताँबे के कुछ ऐसे उपकरण प्राप्त हुए हैं जो मानव की आकृति जैसे हैं (चित्र ११६)।[1] शिवराजपुर से प्राप्त ऐसे तीन उपकरण लखनऊ के राज्य-संग्रहालय में तथा विसौली से प्राप्त एक उपकरण इलाहावाद-संग्रहालय में प्रदर्शित है।[2] लगभग ऐसा ही एक कांस्य उपकरण मानभूमि से प्राप्त हुआ है और पटना-संग्रहालय में रक्खा हुआ है।[3] १८ से० मी० (७ इञ्च से कुछ अधिक) की लम्बाई वाले इस उपकरण में हाथ-पैर अधिक यथार्थ की ओर कहे जा सकते हैं। इस उपकरण की सवसे वड़ी विशेषता यह है कि इसमें दोनों पैरों के बीच एक अन्य छोटा उभार है जो निश्चित रूप से पुरुष-अङ्ग है (चित्र १२०)।[4] यद्यपि इन उपकरणों के निश्चित उपयोग तथा इनसे सम्बद्ध धार्मिकता के स्वरूप से हम आज तक अपरिचित हैं, परन्तु फिर भी कुछ विद्वानों का अनुमान है कि इनका उपयोग अन्य शस्त्रों की भाँति किया जाता होगा। प्रायः विद्वानों ने इन्हें

---

१. द्रष्टव्य हँसमुख धीरज सांकलिया, उपरोक्त, चित्र सं० ११०।

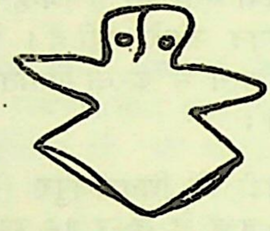
२. बी० बी० लाल, 'फ़र्दर कापर होर्ड्स फ़ॉम दि गैन्जेटिक बेसिन ऐण्ड ए रिव्यू ऑव दि प्रावलेम', एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ७, १६५१, पृ० क्रमशः २६ तथा २४।

३ संग्रहालय सं० २४०, द्रष्टव्य पुरातत्त्व (ए वुलेटिन ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी ऑव इण्डिया), सं० १, १६६७-६८, फलक ६।

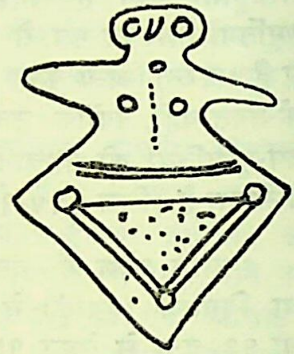
४. पृथिवी कुमार अग्रवाल, ए प्री-हिस्टॉरिक ब्रोंज़ एन्थ्रॉपोमार्फ़ इन दि पटना म्यूज़ियम ऐण्ड इट्स आइडेण्टीफ़िकेशन', पुरातत्त्व, सं० १, पृ० ६६।



११३



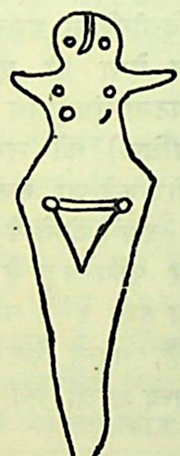
११४



११५



११७



११६

चित्र सं० ११३—११७

मानवाकार आकृतियाँ (एन्थ्रॉपोमार्फ़िक फ़िगर्स) तथा मानवाकार पूजाकृतियाँ (कल्ट-ह्यूमन फ़िगर्स)[1] कहकर इन उपकरणों की मानवाकृति में किसी अज्ञात दैवी स्वरूप की सम्भावना व्यक्त की है। इस कथन से यह अर्थ स्वतः निकलता है कि ये उपकरण वस्तुतः किसी दैवी शक्ति के प्रतीकात्मक अङ्कन थे जिनकी संभव है पूजा की जाती रही हो।

इन उपकरणों की प्राचीनता सर्वसम्मत स्वीकार की गई है। प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता सर मार्टीमर ह्वीलर ने गंगाघाटी के इन उपकरणों को ८वीं शती ई० पू० के पहले का माना है।[2] प्रोफ़ेसर बी० बी० लाल ने इन उपकरणों के निर्माण की संभावना १५०० ई० पू० तथा ११०० ई० पू० के मध्य व्यक्त की है।[3] कार्बन-१४ की वैज्ञानिक गणना के आधार पर डॉ० हँसमुख धीरज सांकलिया ने भी लगभग १५०० ई० पू० के समय को ही इन ताम्र-उपकरणों के लिए सुनिश्चित किया है।[4]

गंगा-घाटी से प्राप्त इन ताम्र-उपकरणों की आकृति ठीक श्रीवत्स प्रतीक जैसी है। शुङ्गयुगीन श्रीवत्स तथा इन उपकरणों की आकृतियों में मात्र इतना अन्तर है कि इन उपकरणों के पैर हाथों के समान गोलाई से मुड़े न होकर सीधे हैं तथा ऊपरी मध्य अङ्ग नुकीला न होकर मानव-मुख जैसा गोल है। विद्वानों द्वारा इन उपकरणों की संपूज्य मान्यता से इनमें श्रीवत्स प्रतीक के स्वरूप की संभावना की पुष्टि हो जाती है तथा इस प्रकार ये उपकरण भारतीय कला में श्रीवत्स प्रतीक के प्राचीनतम अंकन कहे जा सकते हैं।

यदि इन मानवाकार (एन्थ्रॉपोमार्फ़िक) ताम्र-आकृतियों में श्रीवत्स प्रतीक का अंकन स्वीकार कर लिया जाय तो स्वयं स्पष्ट हो जाता है

---

१. सर मार्टीमर ह्वीलर, उपरोक्त, पृ० १२३; बी० बी० लाल, उपरोक्त; वासुदेव शरण अग्रवाल, जर्नल ऑव यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, खण्ड २३, १९५०, पृ० १७६, टिप्पणी २; कृष्णदेव, पुरातत्त्व, सं० ५, पृ० १५-१६।

२. ह्वीलर, उपरोक्त, पृ० १२५।

३. बी० बी० लाल, उपरोक्त, पृ० ३८-३९।

४. सांकलिया, उपरोक्त, पृ० २२५।

कि इन ताम्र-उपकरणों के प्रयोगकर्ता लक्ष्मी-पूजक थे। चूँकि साई-पाई (इटावा, उत्तर प्रदेश) में ताँबे की बर्छी (कॉपर-हार्पून) के साथ गेरुए रङ्ग के मृद्भाण्ड (ओकर कलर पाटरी) मिले हैं,[1] इसलिए यह सोचा गया है कि ताम्र-उपकरणों के प्रयोगकर्ता तथा सिन्धु-सभ्यता के लोग (साईपाई के साक्ष्य के आधार पर) समकालीन थे और साथ-साथ रह रहे थे। लोथल में भी सिन्धु-सभ्यता के अवशेषों के साथ मानवाकार आकृतियाँ (एन्थ्रॉपोमार्फिक उपकरण) पायी गयी हैं।[2] परियर (उन्नाव, उत्तर प्रदेश) में भी ताम्र-उपकरणों के साथ-साथ सिन्धु-सभ्यता वाली काँसे की कटार (ब्रोन्ज़-सेल्ट्स) पाई गई हैं।[3] इनसे यह तथ्य विचारणीय है कि क्या सैन्धव सभ्यता के निवासी भी लक्ष्मी-पूजक थे ? यह तो निर्विवाद है कि सिन्धु-सभ्यता के निवासी अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी थे। अस्तु, उनका लक्ष्मी-पूजक होना नितांत स्वाभाविक है। अगणित संख्या में मातृदेवी की मृण्मूर्तियों की उपस्थिति से तथा एक मोहर पर नारी की योनि से निकलते पादप के प्रतीक[4] द्वारा उद्भासित उसकी सृजन-शक्ति से उपरोक्त विचारों की पुष्टि होती है।

१४वीं शती ई० पू० के कुछ हित्ती अभिलेख मध्य अनातोलिया के बोगाजकुई नामक स्थान पर पाए गए हैं।[5] इन अभिलेखों की लिपि चित्राक्षर है। इस लिपि के कतिपय अक्षर भारतीय मांगलिक चिह्नों के

---

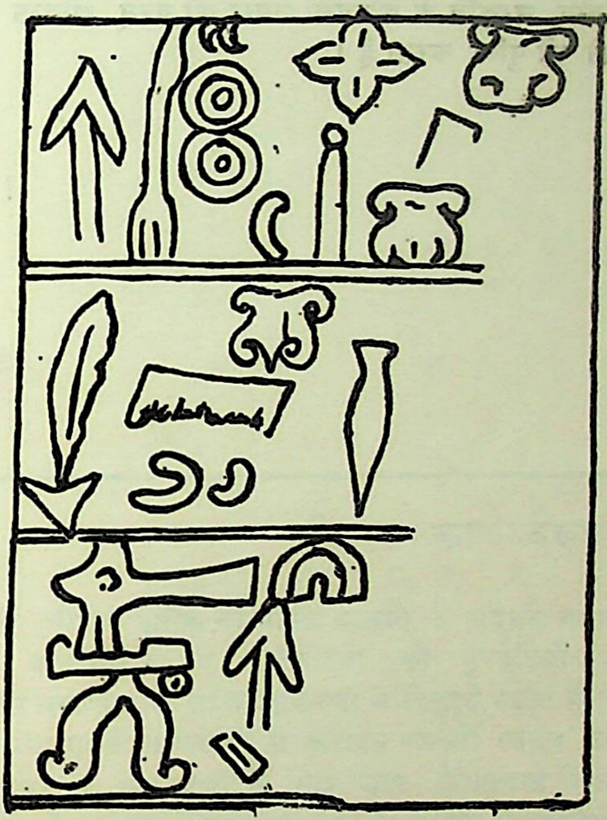
१. सांकलिया, 'फंक्शनल सिगनीफ़िकेन्स ऑव दि ओ० सी० पी० ऐण्ड पी० जी० डब्ल्यू० शेप्स ऐण्ड एसोशिएटेड ऑब्जेक्ट्स', पुरातत्त्व, संख्या ७ (१९७४), पृ० ४७; बी०बी० लाल, 'ए नोट ऑन दि एक्ज़केवेशन ऐट साईपाई', आर्कियोलॉजिकल कांग्रेस ऐण्ड सेमिनार पेपर्स, नागपुर १९७२, पृ० ४६।

२. द्रष्टव्य इण्डियन आर्कियोलॉजी १९५७-५८ ए रिव्यू, पृ० १३, फलक २१ ए।

३. इस सूचना के लिए मैं अपने मित्र डॉ० करुणा शंकर शुक्ल का कृतज्ञ हूँ कि उक्त ब्रोन्ज़ सेल्ट परियर (उन्नाव) के स्थानीय मंदिर में सुरक्षित है।

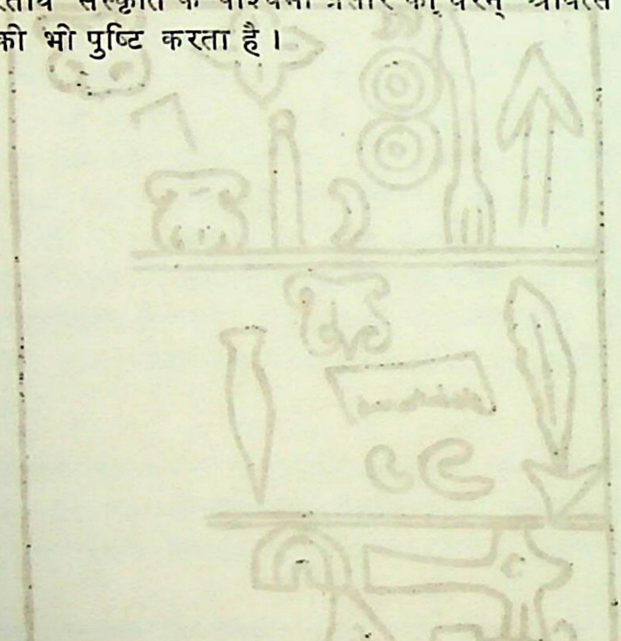
४. नीलकण्ठ शास्त्री, उपरोक्त, फलक ङ१७ ; किरण कुमार थपल्याल एवं संकठा प्रसाद शुक्ल, उपरोक्त, पृ० १२७; सतीश चन्द्र काला, उपरोक्त, पृ० ८९।

५. हित्ती राजधानी बोगाजकुई का उत्खनन् १९०६-१२ में ह्यूगो विंकलर ने तथा १९३१-३९ में बिट्टेल ने किया था। इस खोज में दस हजार से भी अधिक मृत्पट पाए गए हैं जिन पर चित्रलिपि में अभिलेख उत्कीर्ण हैं।



चित्र सं० ११८

आकार जैसे हैं। इनमें स्वस्तिक, अंकुश, परशु तथा चक्र के साथ-साथ श्रीवत्स की आकृति वाले अक्षर भी हैं(चित्र ११८)।[1] यहाँ यह भी ध्यान रहना चाहिए कि इन्हीं अभिलेखों में भारतीय देवताओं—इन्द्र, वरुण, मित्र तथा नास्त्य का उल्लेख भी पाया गया है।[2] अतएव यह उदाहरण न केवल भारतीय संस्कृति के पश्चिमी प्रसार की वरन् श्रीवत्स प्रतीक की प्राचीनता की भी पुष्टि करता है।

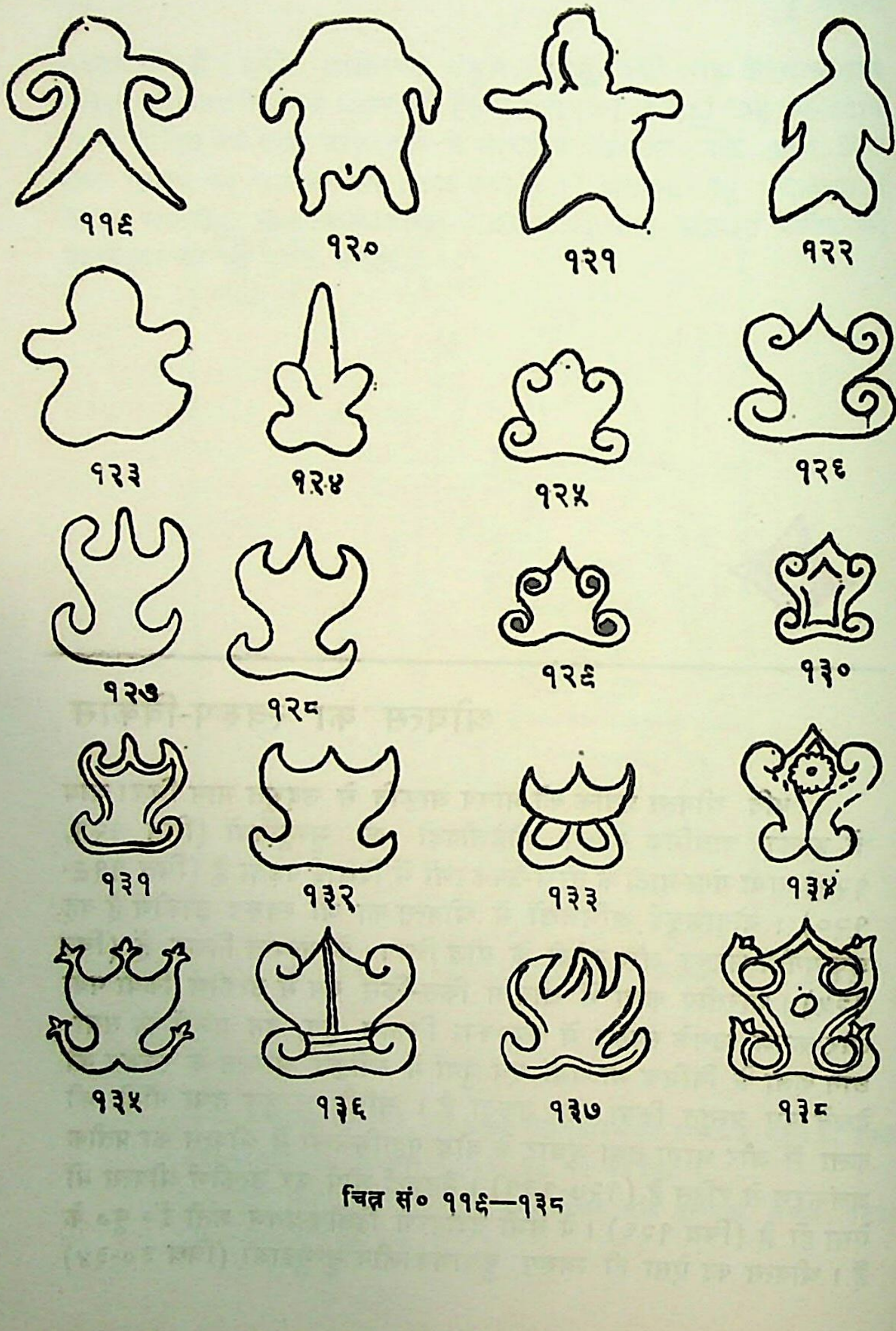


१. द्रष्टव्य इमैनुएल लारोशे, 'ए लॉस्ट सिविलाइज़ेशन इमरजेज़ फ़ॉम दि पास्ट', यूनेस्को कोरियर, फरवरी १९६३, पृ० १५ का चित्र।

२. बेन्जामिन रौलैण्ड, दि आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर ऑव इण्डिया, लन्दन १९५६, पृ० २५७, टिप्पणी ४।

श्रीवत्स का स्वरूप-विकास

यदि श्रीवत्स प्रतीक को मानव आकृति से उद्भूत मान लिया जाय तो इसका प्राथमिक स्वरूप मोहेंजोदड़ो की मृण्मूर्तियों (चित्र १२१, १२२) तथा गंगा-घाटी के ताम्र-उपकरणों में दिखाई पड़ता है (चित्र ११९-१२०)। वोगाज़कुई अभिलेखों में श्रीवत्स का जो स्वरूप उत्कीर्ण है वह शुङ्गयुगीन भरहुत और साँची के बौद्ध शिल्प के अत्यन्त निकट है (चित्र १२५)। भारतीय कला में श्रीवत्स किस-किस रूप में उत्कीर्ण किया गया और क्रमशः उसके स्वरूप में क्या-क्या विकास हुए, इन प्रश्नों का समाधान कला के विभिन्न माध्यमों एवं युगों में स्वीकृत श्रीवत्स के स्वरूप को देखते हुए प्रस्तुत किया जा सकता है। साँची, भरहुत तथा पौनी की कला में और भाजा तथा जुन्नार के बौद्ध गुहाभिलेखों में श्रीवत्स का प्रतीक अलंकरण से रहित है (१२७-१३१)। मैनहाई-शीर्ष पर उत्कीर्ण श्रीवत्स भी ऐसा ही है (चित्र १२६)। ये सभी उदाहरण द्वितीय-प्रथम शती ई० पू० के हैं। श्रीवत्स का ऐसा ही स्वरूप कुषाणकालीन मृण्मुद्राओं (चित्र ३०-३४)



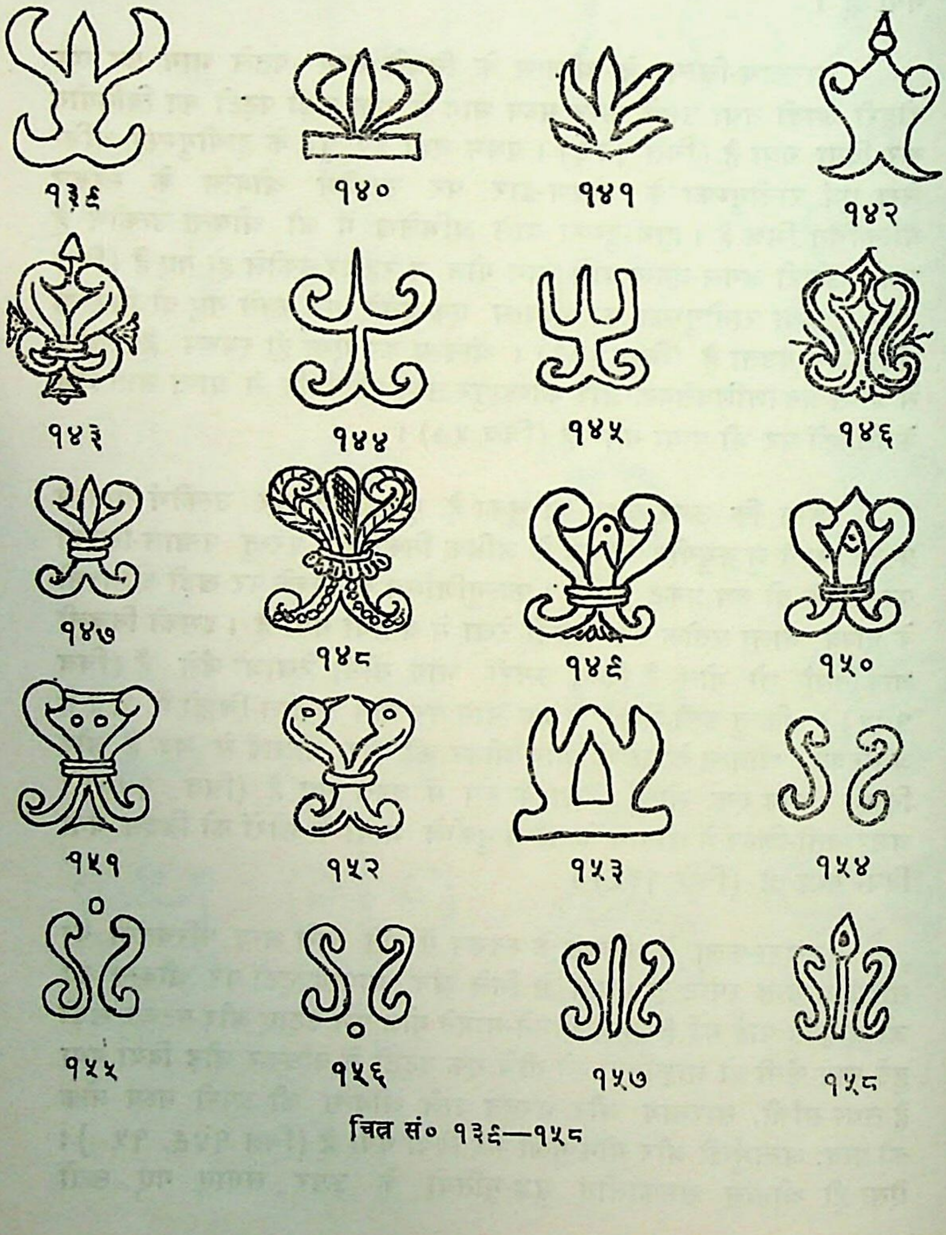
चित्र सं० ११९—१३८

एवं कतिपय सातवाहनकालीन सिक्कों पर भी (चित्र १३७) पाया गया है ।

सारनाथ-शिल्प के श्रीवत्स के निचले तथा पतले भाग पर एक दोहरी आड़ी तथा उसके ऊपर मध्य भाग में एक खड़ी पट्टी का विनियोग कर दिया गया है (चित्र १३६)। प्रथम शती ई० पू० के हाथीगुम्फा अभिलेख एवं रानीगुम्फा के तोरण-द्वार पर उत्कीर्ण श्रीवत्स के स्वरूप यत्किंचित भिन्न हैं। हाथीगुम्फा वाले अभिलेख में जो श्रीवत्स उत्कीर्ण है उसके ऊपरी अगल-वगल वाले भाग गोल न रहकर नुकीले हो गए हैं (चित्र १३२) तथा रानीगुम्फा का श्रीवत्स एक-दूसरे पर रक्खे गए दो त्रिरत्नों जैसा जान पड़ता है (चित्र १३३)। श्रीवत्स का ऐसा ही स्वरूप हैदरावाद से प्राप्त प्रकाशशिवसेवक और कोण्डापुर तथा पणिगिरि से प्राप्त शातकर्णि के सिक्कों पर भी पाया गया है (चित्र ५७)।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, मृण्मुद्राओं पर उत्कीर्ण श्रीवत्स प्रतीक अपने शुङ्गयुगीन स्वरूप के अधिक निकट है। परन्तु पञ्चाल-सिक्कों पर उसके दो रूप प्रकट हुए हैं। फाल्गुणिमित्र के सिक्के पर खड़ी श्रीलक्ष्मी के पार्श्व वाला प्रतीक एक पतली रेखा से वनाया गया है । इसकी निचली आकृतियाँ तो गोल हैं किन्तु ऊपरी भाग सीधी रेखाओं जैसे हैं (चित्र १४५)। किन्तु इसी सिक्के के अग्र भाग पर तीन पञ्चाल-चिह्नों में वीच में अवस्थित श्रीवत्स के ऊपरी भाग भीतर की ओर गोलाई से वक्र हैं और निचले भाग एक सीधी रेखा के रूप में वदल गए हैं (चित्र १४०)। अमरावती-शिल्प में श्रीवत्स के पाँचों नुकीले भागों के छोरों को त्रिदल वना दिया गया है (चित्र १३५)।

मथुरा-कला में श्रीवत्स के स्वरूप में होने वाले अन्य परिवर्तनों का साक्ष्य अत्यन्त स्पष्ट है। यहाँ से मिले जैन आयागपट्टों पर श्रीवत्स की जो आकृति पाई गई है उसमें आमने-सामने गोल फन उठाए और सटकर खड़ी हुई नाग जैसी दो आकृतियों को नीचे एक पट्टी से वाँधकर जोड़ दिया गया है तथा साँची, सारनाथ और भरहुत वाले श्रीवत्स की ऊपरी मध्य नोक को प्रायः अन्तर्मुखी और मीन-मुखी कर दिया गया है (चित्र १४९, १५०)। ऐसा ही श्रीवत्स समकालीन बुद्ध-मूर्तियों के ऊपर लगाए गए छत्रों



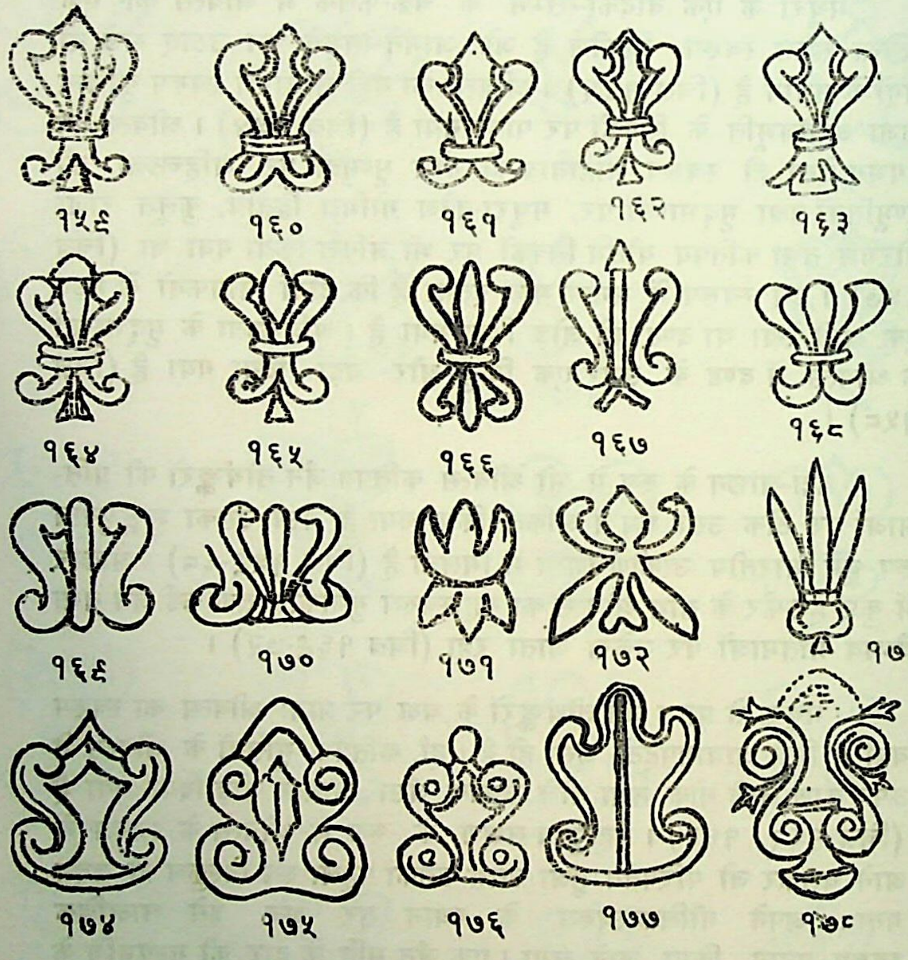
चित्र सं० १३९—१५८

(चित्र १४७, १५१) तथा बेग्राम से प्राप्त दन्तकलाकृतियों पर भी उकेरा गया है (चित्र १४८)।

मथुरा के एक वेदिका-स्तम्भ के चक्र-फलक में श्रीवत्स का एक अत्यन्त सरल स्वरूप उत्कीर्ण है जो आमने-सामने फन उठाए खड़े दो नागों के समान है (चित्र १४६)। श्रीवत्स का यही साधारण स्वरूप कुणिन्द राजा अमोघभूति के सिक्कों पर पाया गया है (चित्र १५४)। श्रीवत्स का लगभग ऐसा ही स्वरूप शाहाबाद की गोल मृण्मुद्रा पर, अहिच्छत्रा की मृण्मूर्तियों तथा मृद्भाण्डों पर, मथुरा-नरेश गोमित्र द्वितीय, कुलूत राजा वीरयश तथा कतिपय यौधेय-सिक्कों पर भी अंकित किया गया था (चित्र १५७)। इस स्वरूप में अन्तर मात्र इतना है कि दोनों नागफनों के मध्य एक खड़ी रेखा या दण्ड को जोड़ दिया गया है। अहिच्छत्रा के मृद्भाण्डों के श्रीवत्स में दण्ड के ऊपर एक बिन्दु और बढ़ा दिया गया है (चित्र १५८)।

वक्ष-लांछन के रूप में भी श्रीवत्स कतिपय जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं पर ठीक उसी रूप में अंकित किया गया है जैसा उसका शुङ्गयुगीन रूप हमें भारतीय उत्कीर्ण-शिल्प में मिलता है (चित्र १५९-६८)। आकार में कुछ हेर-फेर के साथ श्रीवत्स का यह स्वरूप गुप्तकाल तक कई जैन तथा वैष्णव प्रतिमाओं पर उकेरा जाता रहा (चित्र १६९-७२)।

मथुरा से प्राप्त जैन तीर्थङ्करों के वक्ष पर प्रायः श्रीवत्स का स्वरूप वहाँ से मिले आयागपट्टों जैसा ही है। हाँ, कतिपय मूर्तियों के श्रीवत्स में ऊपर बाण जैसी नोक तथा नीचे त्रिकोण जैसा आधार जोड़ दिया गया है (चित्र १६२, १६३)। महापुरुष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स के स्वरूप में आगे चलकर जो परिवर्तन हुआ उससे उसका पहला रूप बिल्कुल ही बदल गया। अपने मौलिक स्वरूप के स्थान पर अब इसे लाक्षणिक स्वरूप प्रदान किया जाने लगा। एक जैन मूर्ति के हार की मध्यमणि के रूप में श्रीवत्स का अंकन एक विकसित पद्म जैसा है जिसकी ऊपरी उठी हुई तीन पंखुड़ियों में बीच वाली सीधी तथा अगल-बगल वाली भीतर की ओर वक्र हो गई हैं और नीचे की पंखुड़ियाँ गोलाकार हैं (चित्र १७०)। इस श्रीवत्स की ऊपरी तीन पंखुड़ियाँ पञ्चाल-सिक्कों के मध्य प्रतीक जैसी



चित्र सं० १५९—१७८

हैं (तुलनीय चित्र १४०)। लगभग ऐसा ही श्रीवत्स मथुरा की एक अन्य तीर्थङ्कर-प्रतिमा पर पाया गया है जो अब लखनऊ के राज्य-संग्रहालय में हैं। प्रथम शती ई० की एक जैन प्रतिमा का वक्ष-लक्षण कुछ विचित्र है। इसमें ऊपरी तीनों रेखाएं सीधी क्षुरप्र सरीखी तथा निचला भाग तिकोने आधार वाले कलश जैसा है (चित्र १७३)।

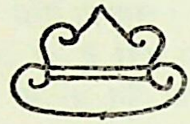
कालान्तर में श्रीवत्स के प्रतीक में नितान्त रूप-भिन्नता और लाक्षणिकता आ गई। कुछ परवर्ती जैन प्रतिमाओं पर इसे ताश के पत्तों की ईंट जैसा चतुष्कोणिक आकार प्रदान किया गया था (चित्र १८६, १८७, १९९)। लगभग इसी प्रकार का श्रीवत्स सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त होने वाली विष्णु की तथा इलाहाबाद-संग्रहालय में प्रदर्शित खजुराहो का आदिवराह की मूर्ति के वक्षस्थल पर उत्कीर्ण है (चित्र १९७, १९९)।

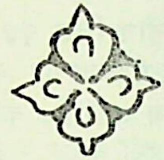
श्रीवत्स का यह स्वरूप कभी-कभी चतुर्दलीय पुष्प जैसा हो गया है। मध्ययुगीन विष्णु तथा जैन प्रतिमाओं से इसकी पुष्टि की जा सकती है। मथुरा से प्राप्त विक्रम संवत् १०३८ तथा ११३४ में निर्मित तीर्थङ्करों की विशाल प्रतिमाओं पर श्रीवत्स लांछन का चतुर्दलीय स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट है (चित्र १८५-८६)। ऐसा ही श्रीवत्स तत्कालीन विष्णु-प्रतिमाओं के वक्षस्थल पर भी देखा जा सकता है। इलाहाबाद-संग्रहालय की विष्णु तथा जैन सभी प्रतिमाओं पर श्रीवत्स का चतुर्दलीय पुष्प जैसा स्वरूप ही उत्कीर्ण है।

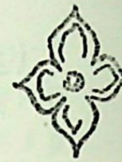
चतुर्दलीय पुष्प के रूप में भी श्रीवत्स को तत्कालीन मूर्तिकारों ने भिन्न-भिन्न रूप दिए थे। कभी तो उन्होंने मध्य चक्र से जुड़े ऊपर-नीचे तथा दाएँ-बाएँ चार दल मात्र उकेरे थे (चित्र १८२-८४) और कभी इन चार बड़े दलों के बीच-बीच चार अन्य छोटे दलों की भी उद्भावना कर दी थी (चित्र १८५-८८)। परन्तु स्थूल दृष्टि से दोनों रूप चतुर्दलीय पुष्प ही जान पड़ते हैं। ये दल प्रायः नुकीले हैं, परन्तु कभी-कभी उन्हें गोल भी बना दिया जाता था (चित्र १९०-९१)। इन चतुर्दलों की ऊपर-नीचे तथा अगल-बगल की पंखुड़ियाँ कभी तो बराबर हैं (चित्र १८२), परन्तु प्रायः ऊपर-नीचे वाली पंखुड़ियाँ अगल-बगल वाली पंखुड़ियों से अधिक लम्बी हैं और इस प्रकार ईंट के पत्ते जैसा आकार बनाती हैं (चित्र १८६-८७)।

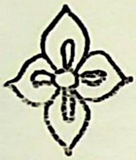

१७९

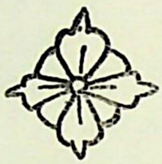

१८०


१८१


१८२

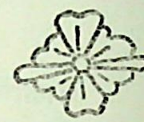

१८३


१८४


१८५

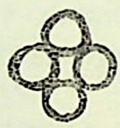

१८६


१८७


१८८


१८९


१९०


१९१


१९२


१९३


१९४


१९५


१९६


१९७


१९८


१९९


२००


२०१

चित्र सं० १७९—२०१

कतिपय प्रतिमाओं पर श्रीवत्स को पुष्पदल के स्थान पर बाहर को नोक किए हुए चार त्रिकोणों से बना दिया गया है (चित्र १९२, १९३ एवं १९५)। गुप्तयुग में श्रीवत्स के विविध स्वरूप प्रस्तुत किए गए थे। वसन्तगढ़ संग्रह में प्राप्त और अब राजस्थान के पिण्डवाड़ा जैन मन्दिर में स्थापित पीतल की आदिनाथ प्रतिमा का वक्ष षट्दलीय श्रीवत्स से अलंकृत है (चित्र १८९)। दक्षिण भारत से प्राप्त कुछ मध्ययुगीन मूर्तियों के वक्ष पर श्रीवत्स प्रतीक एक सादे त्रिकोण (चित्र २०१)[1] तथा अपने प्रारम्भिक स्वरूप जैसा भी पाया गया है (चित्र २००)।[2]

श्रीवत्स की सहस्रवर्षीय परम्परा में उसके स्वरूप में जो परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं वे वास्तव में सरलीकरण पद्धति के द्योतक जान पड़ते हैं। मानवाकार श्रीवत्स की अपेक्षा शुङ्गयुगीन श्रीवत्स का रूप बनाना सरल था और इसी प्रकार कुषाणकालीन नागफनी श्रीवत्स की अपेक्षा उसका चतुर्दलीय रूप अधिक सहज है। चूँकि शताब्दियों की इसकी परम्परा ने श्रीवत्स का महत्त्व प्रतिष्ठित कर दिया था इसलिए उसकी पहचान के लिए उसके स्वरूप में यह परिवर्तन कोई विशेष अड़चन नहीं डाल सका।

---

१. द्रष्टव्य एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ६; चित्र २९।१ डी।

२. वही, चित्र २९।१ बी।

चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणि अ जंतुणो
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मि अ वीरिअं ॥

उत्तराध्ययन, ३।१

उपसंहार

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय कला में श्रीवत्स प्रतीक की उद्‌भावना संभवतः आज से लगभग तीन-साढ़े तीन हजार वर्ष से भी पहले (लगभग १५००-११०० ई० पू०) हुई होगी जिसके संभावित उदाहरण हमें अति प्राचीन मातृदेवी की मृण्मूर्तियों के साथ पाई जाने वाली ताराकार पुरुष-मृण्मूर्तियों में ढूँढ़ना होगा। मानवाकार आकृतियों (एन्थ्रॉपोमार्फ़िक फ़िगर्स) एवं वोगाज़कुई-अभिलेखों के युग से श्रीवत्स का अस्तित्व असंदिग्ध है। इस मांगलिक प्रतीक की परम्परा क्रमशः श्रीचक्रों एवं पूर्व-मौर्य तथा मौर्ययुगीन ताराकार मृण्मूर्तियों के रूप में मौर्यकाल तक सतत् प्रवहमान रही। इसके वाद शुङ्गयुग से लेकर कुषाणकाल तक श्रीवत्स के विविध अङ्कन भारतीय कला के विभिन्न माध्यमों (उत्कीर्ण-शिल्प, मूर्तिकला, वास्तुकला, दन्तकला, सिक्के, मृण्मुद्राएँ, आयागपट्ट, छत्त, मृद्‌भाण्ड आदि) में उकेरे गए थे। कुषाणकाल तक (लगभग द्वितीय-तृतीय शती ई०) श्रीवत्स प्रतीक प्रायः मांगलिक चिह्न के रूप में ही अङ्कित किया

गया था। महापुरुष-लक्षण के रूप में इसे पहली बार मथुरा की जैन मूर्तियों पर उकेरा गया था। वस्तुतः श्रीवत्स प्रतीक प्रारम्भ में मांगलिक चिह्न के रूप में भारतीय कला में उद्भूत हुआ परन्तु इसकी परिणति महापुरुष-लक्षण के रूप में हुई जो भारतीय मूर्तिकला में मध्यकाल तक निरन्तर पाई जाती रही।

'श्री वत्स' शब्द के भाषागत अर्थ की दृष्टि से श्रीलक्ष्मी से इस प्रतीक की सन्निकटता स्वतः स्पष्ट हो जाती है और इसकी सम्पुष्टि साँची-शिल्प के कई उत्कीर्ण-फलकों से स्वयमेव हो जाती है। श्रीवत्स के जो अर्द्ध-प्रतीकात्मक अङ्कन दक्षिण भारत से मिले हैं उनमें पद्मासन तथा दिग्गजों की सृष्टि से भी श्रीलक्ष्मी से इस प्रतीक की समरूपता प्रकट हो जाती है। श्री-वत्स अर्थात् 'श्री की सन्तान'; दूसरे शब्दों में 'श्रम, सौन्दर्य तथा सर्जना-शक्ति से समन्वित मानव।' और इसी अभिप्राय का रूपाङ्कन था श्रीवत्स प्रतीक। इसीलिए मानवीय शरीर से ही इस प्रतीक की उद्भावना हुई जिसके प्राचीनतम उदाहरण हैं गंगाघाटी के विचित्र मानवाकार ताम्र-उपकरण तथा नवीनतम उदाहरण हैं मद्रास के राजकीय संग्रहालय में संग्रहीत पेड्डुमुडियम और कावेरिपक्कम के उत्कीर्ण शिल्प तथा तंजौर की कांस्य-प्रतिमा।

महापुरुष-लक्षण के रूप में श्रीवत्स का उल्लेख यद्यपि साहित्य में लगभग ५०० ई० पू० में ही पाया जाता है, परन्तु आश्चर्य है कि भारतीय कला में इसे पहली बार ईसा संवत् की प्रारम्भिक शताब्दियों में ही जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण किया गया था। वैष्णव प्रतीक के रूप में प्राचीनतम साहित्यिक उल्लेख होने पर भी वैष्णव प्रतिमाओं पर, मथुरा की नृ-वराह तथा बलराम की प्रतिमाओं के अपवाद को छोड़कर, श्रीवत्स लक्षण को गुप्तकाल में ही प्रश्रय मिल सका। सारांश यह है कि श्रीवत्स प्रतीक मांगलिक चिह्न के रूप में प्रायः कुषाणकाल तक और महापुरुष-लक्षण के रूप में कुषाणकाल से मध्यकाल तक भारतीय कला में अधिक लोकप्रिय रहा था। गुप्तकाल से पहले श्रीवत्स के महापुरुष-लक्षण का स्वरूप तो मथुरा की नृ-वराह प्रतिमा तथा जैन तीर्थङ्करों की प्रतिमाओं पर पाया भी जाता है, परन्तु मांगलिक चिह्न के रूप में श्रीवत्स का कोई भी अङ्कन गुप्तकाल के बाद नहीं पाया जाता है।

गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्णकाल रहा है। कला के क्षेत्र में भी इस काल की उपलब्धियाँ उल्लेखनीय हैं। परन्तु गुप्तकाल के कलाकारों द्वारा अष्टमांगलिक चिह्नों में से श्रीवत्स को बिलकुल भुला देना आश्चर्यजनक जान पड़ता है और इसका कोई समुचित कारण भी स्पष्ट नहीं हो पाता है।

गुप्तकाल में मांगलिक चिह्न के रूप में श्रीवत्स के जो कतिपय उदाहरण बताए जाते हैं उनके विषय में यह आवश्यक रूप से सुनिश्चित नहीं है कि वे गुप्तकालीन ही हैं। अहिच्छत्रा की खुदाई से प्राप्त मृद्भाण्डों का समय द्वितीय एवं चतुर्थ शती ई० के बीच का माना गया है।[1] भीटा, कौशाम्बी, राजघाट, बसाढ़ तथा झूँसी आदि स्थानों से प्राप्त मृण्मुद्राओं के लेखों की लिपि के आधार पर इनका निर्माणकाल कुषाण तथा प्रारम्भिक गुप्तकाल माना गया है।[2] अस्तु, इन कृतियों को निश्चयत: गुप्तकालीन होना आवश्यक नहीं है। यदि इन्हें कुषाणकालीन मान लिया जाय तो उपरोक्त निष्कर्ष सही जान पड़ता है कि गुप्तकाल के कलाकारों ने श्रीवत्स प्रतीक का अङ्कन मांगलिक चिह्न के रूप में नहीं किया था। इसका एक संभावित कारण यह हो सकता है कि गुप्तकाल के पहले से ही श्रीवत्स एक महापुरुष-लक्षण के रूप में विकसित हो चुका था और इसका वक्ष-लक्षण रूप मांगलिक चिह्न की अपेक्षा अधिक लोकप्रिय हो गया था। एक प्रकार से वक्ष-लांछन भी एक मांगलिक चिह्न ही था। दूसरा कारण भारतीय कला में प्रतीकात्मकता के स्थान पर यथार्थता का अभ्यङ्कन भी कहा जा सकता है। शुङ्ग-सातवाहनकाल की कला में प्रतीकों का व्यापक अङ्कन उपलब्ध है। कुषाणकाल में इनका अङ्कन कम होने लगा और गुप्तकाल की कला में ये प्रतीक प्राय: अदृश्य से हो गए थे।

१. एन्शियण्ट इण्डिया, सं० १, द्रष्टव्य पद्मिनी सेनगुप्ता, उपरोक्त, पृ० १७३।

२. किरण कुमार थपल्याल, स्टडीज़ इन एन्शियण्ट इण्डियन सील्स, पृ० ६६।

सिद्धौषधानि भवदुःखमहागदानाम्
पुण्यात्मनां परमकर्णरसायनानि ।
प्रक्षालनैकसलिलानि मनोमलानाम्
शौद्धोधनेः प्रवचनानि चिरं जयन्ति ।

षष्टिशतकप्रकरण, मंगलाचरण ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

(क) मूल ग्रन्थ

जैन साहित्य

१. औपपातिक सूत्र
२. तिलोयपण्णत्ति (सं० डॉ० आ० ने० उपाध्ये एवं डॉ० हीरालाल जैन), शोलापुर, १९४३।
३. प्रवचनसारोद्धार
४. रायपसेणिय सुत्त
५. समवायांग सूत्र

बौद्ध साहित्य

६. आचारदिनकर
७. उत्तराध्ययन सूत्र
८. धर्मप्रदीपिका
९. धर्मसंग्रह (सं० केन जियू कसवारा), ऑक्सफ़ोर्ड, १८८५।
१०. मज्झिमनिकाय
११. महापधानसुत्त
१२. महाव्युत्पत्ति (सं० सकाई)
१३. ललितविस्तर (सं० पी० एल० वैद्य), मिथिला विद्यापीठ, १९५८।
१४. सम्यक्सम्बुद्धभाषित प्रतिमामानलक्षणम् (सं० जितेन्द्र नाथ बनर्जी),

ब्राह्मण साहित्य

१५. कुमारसंभव (कालिदास ग्रंथावली—सं० पं० सीताराम चतुर्वेदी), काशी, २००७ वि० सं०।
१६. गोपाल उत्तरतापनीय उपनिषद्
१७. त्रिपुरारहस्य
१८. बृहत्संहिता (सं० पं० श्रीअच्युतानन्द शर्मा), वाराणसी, १९७०।
१९. महाभारत

२०. मार्कण्डेय पुराण (सं० पं० बल्देव प्रसाद एवं पं० मंगला प्रसाद), लखनऊ, १८८४ ।

२१. मानसार (सं० प्रसन्नकुमार आचार्य)

२२. रघुवंश (कालिदास ग्रंथावली), काशी, २००७ वि०सं० ।

२३. वाल्मीकीय रामायण (गीताप्रेस गोरखपुर संस्करण) ।

२४. विष्णुधर्मोत्तर पुराण (सं० प्रियबल शाह), बड़ौदा, १९५८ ।

२५. सूत्रधारमण्डनविरचित प्रासादमण्डनम् (अनु० एवं सं० पं० भगवान दास जैन), जयपुर सिटी, १९६३ ।

२६. श्रीप्रश्नसंहिता

२७. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद् (निर्णयसागर प्रेस) बम्बई, १९२५ ।

२८. हरिवंश पुराण (सं० पन्नालाल साहित्याचार्य), काशी, १९६३ ।

कोश साहित्य

२९. अभिधान चिंतामणि (सं० पं० हरगोविन्द शास्त्री), वाराणसी, १९६४ ।

३०. अमरकोश चौखम्भा संस्कृत सीरीज़, वाराणसी, १९७० ।

३१. वाचस्पत्यम् (सं० तारानाथ भट्टाचार्य), वाराणसी, १९६२ ।

३२. शब्दकल्पद्रुम (सं० राजा राधाकान्तदेव बहादुर), वाराणसी, १९६१ ।

३३. हलायुधकोश (सं० जयशंकर जोशी), वाराणसी, शक सं० १८७९ ।

(ख) सामान्य ग्रन्थ

१. अमलानन्द घोष (सं०)—जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर, ३ खण्ड, नई दिल्ली ।

२. अमलानन्द घोष एवं धर्मपाल अग्रवाल (सं०)—रेडियो कार्बन एण्ड इण्डियन आर्कियोलॉजी, बम्बई, १९७३ ।

३. उमानन्द प्रेमानन्द शाह (सं०)—आॅस्पेक्ट्स आॅव जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर, अहमदाबाद, १९७५ ।

४. ए० डब्ल्यू० खान—ए मोनोग्रॉफ़ आॅव ऐन अर्ली बुद्धिस्ट स्तूप ऐट केसनापल्ली, हैदराबाद, १९६९ ।

५. एलन—बृटिश म्यूज़ियम कैटेलॉग—एन्शियण्ट इण्डिया ।

६ एलन डेनियल—हिन्दू पॉलीथीज्म, लन्दन, १९६४ ।
७. ओसमू तकाता—दि आर्ट ऑव इण्डिया, २ खण्ड ।
८ कनिंघम—कार्पस इन्स्क्रिप्शन इण्डिकेरम, खण्ड १ ।
९ कनिंघम—दि स्तूप ऑव भरहुत, वाराणसी, १९६२ ।
१०. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी—ए सॅगा ऑव इण्डियन स्कल्पचर, बम्बई, १९५७ ।
११. किरण कुमार थपल्याल स्टडीज़ इन एन्शियण्ट इण्डियन सील्स, लखनऊ, १९७२ ।
१२. के० के० दासगुप्ता—ए ट्रायबल हिस्ट्री ऑव एन्शियण्ट इण्डिया : ए न्यूमिस्मेटिक एप्रोच, कलकत्ता, १९७४ ।
१३. कृष्णदत्त बाजपेयी—मथुरा, लखनऊ, १९५६ ।
१४ कृष्णदत्त बाजपेयी—ऐतिहासिक नगर तुमैन, सागर, १९७४ ।
१५ गोवर्द्धन राय शर्मा—एक्ज़केवेशन ऐट कौशाम्बी, इलाहाबाद, १९६० ।
१६. गोवर्द्धन राय शर्मा—फ़्रॉम प्रीहिस्ट्री टु हिस्ट्री, इलाहाबाद, १९८० ।
१७. गोवर्द्धन राय शर्मा—रेह इन्स्क्रिप्शन ऑव मेनाण्डर ऐण्ड दि इण्डोग्रीक इनवेज़न ऑव दि गंगा वैली, इलाहाबाद, १९८० ।
१८ चितरंजन राय चौधुरी—ए कैटेलॉग ऑव अर्ली इण्डियन क्वाइन्स इन दि आशुतोष म्यूज़ियम, कलकत्ता, भाग १, कलकत्ता, १९६२ ।
१९ जगदीश गुप्त—प्रागैतिहासिक भारतीय चित्रकला, दिल्ली, १९६७ ।
२०. जनार्दन मिश्र—प्रतीक विद्या, पटना, १९५९ ।
२१. जितेन्द्रनाथ बनर्जी—दि डेवलपमेण्ट ऑव हिन्दू आइक्नोग्रैफ़ी, नया संस्करण ।
२२ जेम्स बर्जेस—बुद्धिस्ट आर्ट इन इण्डिया, नया संस्करण, नई दिल्ली ।
२३. जेम्स बर्जेस—रिपोर्ट ऑव दि एण्टीक्विटीज़ ऑव काठियावाड़ ऐण्ड कच्छ, लन्दन, १९७६ ।
२४. जेम्स बर्जेस तथा भगवान इन्द्रजी—इन्स्क्रिप्शन्स फ़्रॉम दि केव-टेम्पुल्स ऑव वेस्टर्न इण्डिया, बम्बई, १९८१ ।
२५. द्विजेन्द्रनाथ शुक्ल—भारतीय स्थापत्य, लखनऊ, १९६८ ।
२६. दिनेशचंद्र सरकार—स्टडीज़ इन इण्डियन क्वाइन्स, दिल्ली, १९६८ ।
२७. देबला मित्रा—उदयगिरि ऐण्ड खण्डगिरि, नई दिल्ली, १९६० ।
२८ नीलकण्ठ शास्त्री—सिन्धु-सभ्यता का आदि केन्द्र-हड़प्पा, दिल्ली, १९५९ ।

२९. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी—लाइफ़ इन एन्शियण्ट उत्तरापथ, वाराणसी, १९६७।
३०. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी—मथुरा स्कल्पचर्स, मथुरा, १९६६।
३१. नीहार रंजन रे—ब्रह्मैनिकल गॉड्स इन बर्मा, कलकत्ता, १९३२।
३२ पद्मिनी सेनगुप्ता—इवरी डे लाइफ़ इन एन्शियण्ट इण्डिया, लन्दन, १९५१।
३३. प्रमोदचन्द्र - स्टोन स्कल्पचर्स इन दि इलाहाबाद म्यूज़ियम, बम्बई, १९७०।
३४. प्रसन्नकुमार आचार्य -ए डिक्शनरी ऑव हिन्दू आर्कीटेक्चर, इलाहाबाद, १९२७।
३५. पृथिवी कुमार अग्रवाल—श्रीवत्स-दि बेब ऑव गॉडेस श्री, वाराणसी, १९७४।
३६. बेंजामिन रौलैण्ड—दि आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर ऑव इण्डिया, लन्दन, १९५६।
३७. एम० वेंकटरामय्या (अनु० के० एन० शास्त्री)—श्रावस्ती, नई दिल्ली, १९५९।
३८. मार्शल, फूशे तथा मजूमदार- मान्यूमेण्ट्स ऑव साँची, ३ खण्ड, लन्दन, १९४०।
३९. रमेशचंद्र मजूमदार (सं०)—दि एज ऑव इम्पीरियल यूनिटी, बम्बई, १९५३।
४०. राजेन्द्रलाल मित्र—दि एण्टीक्विटीज़ ऑव उड़ीसा, २ खण्ड, कलकत्ता, १९६३।
४१. आर० एस० वाऊचोरे—बुद्धिस्ट केव-टेम्पुल्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९३३।
४२. रिज़ डेविड्स—बुद्धिस्ट इण्डिया, कलकत्ता, १९५७।
४३. रैप्सन (सं०)—केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, भाग १, दिल्ली, १९५५।
४४. रैप्सन (सं०)—क्वाइन्स ऑव आन्ध्र डायनेस्टी ऐण्ड वेस्टर्न क्षत्रपज़।
४५. एल० मैलरेट—ऑर्कियोलॉजी दु डेल्टा दु मेकांग, पेरिस, १९६०।
४६. लुडविग बकोफ़र—अर्ली इण्डियन स्कल्पचर, २ खण्ड, पेरिस, १९२९।
४७. वासुदेव उपाध्याय—प्राचीन भारतीय मूर्तिविज्ञान, वाराणसी, १९७०।
४८. वासुदेव उपाध्याय—प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, पटना, १९७१।
४९. वासुदेव उपाध्याय—गुप्त अभिलेख, पटना, १९७४।
५०. वासुदेव शरण अग्रवाल—हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन, पटना, १९६४।

५१. वासुदेव शरण अग्रवाल—सारनाथ, नई दिल्ली, १९५८ ।
५२. वासुदेव शरण अग्रवाल—स्टडीज़ इन इण्डियन आर्ट, वाराणसी, १९६५ ।
५३. वासुदेव शरण अग्रवाल—इण्डियन आर्ट, वाराणसी, १९६५ ।
५४. वासुदेव शरण अग्रवाल—दि हेरिटेज ऑव इण्डियन आर्ट, नई दिल्ली, १९६४ ।
५५. वासुदेव शरण अग्रवाल—कैटेलॉग ऑव दि मथुरा म्यूज़ियम, लखनऊ, १९५० ।
५६. विन्सेट स्मिथ—दि जैन स्तूप ऐण्ड अदर एण्टीक्विटीज़ ऐट मथुरा, वाराणसी, १९६९ ।
५७. विनोद प्रकाश द्विवेदी - इण्डियन आइवरीज़, दिल्ली, १९७६ ।
५८. वेटेनिक चार्ल्स तथा वीयर्ट—दि ह्यूमन फ़िगर, नीदरलैण्ड्स ।
५९. शशिकान्त–दि हाथीगुम्फा इन्स्क्रिप्शन ऑव खारवेल ऐण्ड दि भाब्रू एडिक्ट ऑव अशोक, दिल्ली, १९७१ ।
६०. शिवराममूर्ति—अमरावती स्कल्पचर्स इन दि गवर्न्मेण्ट म्यूज़ियम मद्रास, मद्रास, १९४२ ।
६१. शिवराममूर्ति—संस्कृत लिटरेचर ऐण्ड आर्ट : मिरर ऑव इण्डियन कल्चर, दिल्ली, १९५५ ।
६२. शिवराममूर्ति--आर्ट ऑव इण्डिया, न्युयार्क, १९७७ ।
६३. सी० जे० ब्राउन—दि क्वाइन्स ऑव इण्डिया, कलकत्ता, १९२२ ।
६४. एस० के० सरस्वती--ए सर्वे ऑव इण्डियन स्कल्पचर, कलकत्ता, १९५७ ।
६५. सतीश चन्द्र काला—टेराकोटा फ़िगरीन्स फ़्रॉम कौशाम्बी, इलाहाबाद, १९५० ।
६६. सतीश चन्द्र काला—मोहेंजोदड़ो तथा सिन्धु-सभ्यता, वाराणसी, २००८ वि० सं० ।
६७. संकठा प्रसाद शुक्ल तथा किरण कुमार थपल्याल—सिन्धु-सभ्यता, लखनऊ, १९७५ ।
६८. हँसमुख धीरज सांकलिया—प्रीहिस्ट्री ऐण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑव इण्डिया ऐण्ड पाकिस्तान, बम्बई, १९६२ ।
६९. हँसमुख धीरज सांकलिया फ़्रॉम हिस्ट्री टु प्रीहिस्ट्री ऐट नेवासा, पूना, १९६० ।
७०. हीरालाल जैन—भारतीय संस्कृति में जैन धर्म का योगदान, भोपाल, १९६२ ।
७१. हेनरिक ज़िमर—दि आर्ट ऑव इण्डियन एशिया, २ खण्ड ।

(ग) शोध निबन्ध

१. आनन्द कुमार स्वामी—इण्डियन आर्कीटेक्चरल टर्म्स, **जर्नल ऑव दि अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी**, खण्ड ४८, सं० ३ ।

२. इमैनुएल लारोशे—ए लॉस्ट सिविलाइज़ेशन इमरजेज़ फ्रॉम दि पास्ट, **यूनेस्को कोरियर**, फरवरी १९६३ ।

३. उमानन्द प्रेमानन्द शाह—जैन ब्रोन्जेज़ : ए ब्रीफ़ सर्वे, **ऑस्पेक्ट्स ऑव जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर**, अहमदाबाद, १९७५ ।

४. के० के० दासगुप्ता—रेयर ट्रायबल क्वाइन्स ऑव दि लिंजेन कलेक्शन, **जर्नल ऑव दि न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया**, खण्ड ३६ (१९७४) ।

५. ऋषिराज त्रिपाठी—ए प्लेक विद लक्ष्मी फ्रॉम कौशाम्बी इन इलाहाबाद म्यूज़ियम, **जर्नल ऑव दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट**, खण्ड २१, सं० ४ ।

६. ऋषिराज त्रिपाठी—सम कापर सील्स इन इलाहाबाद म्यूज़ियम, **जर्नल ऑव दि न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया**, खण्ड २७, भाग १ ।

७. ऋषिराज त्रिपाठी—सम रेयर टेराकोटाज़ इन दि इलाहाबाद म्यूज़ियम, **जर्नल ऑव ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट**, खण्ड २१, सं० ४ ।

८. जगदीश गुप्त—आयुधालंकृत शिरोभूषायुक्त बलिदेवी की रहस्यमयी मृण्मूर्तियाँ, **गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रंथ**, लखनऊ, १९६७ ।

९. नागस्वामी—जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर अण्डर पल्लवज़, **ऑस्पेक्ट्स ऑव जैन आर्ट ऐण्ड आर्कीटेक्चर**, अहमदाबाद, १९७५ ।

१०. नीलकण्ठ पुरुषोत्तम जोशी—ऑस्पिशस सिम्बल्स इन दि कुषाण आर्ट ऐट मथुरा, **डॉ० मिराशी अभिनन्दन ग्रंथ**, नागपुर, १९६५ ।

११. पी० वी० बापट—फ़ोर ऑस्पिशस थिंग्स ऑव दि बुद्धिस्ट्स, **इण्डिका**, खण्ड १८ ।

१२. पृथिवी कुमार अग्रवाल—ए प्रीहिस्टॉरिक ब्रोंज़ एन्थ्रॉपोमार्फ इन दि पटना म्यूज़ियम ऐण्ड इट्स आइडेण्टीफिकेशन, **पुरातत्त्व**, सं० १ ।

१३. बृजवासी लाल—फ़रदर कापर होर्ड्स फ्रॉम दि गैंजेटिक बेसिन ऐण्ड ए रिव्यू ऑव दि प्रॉबलेम, **एन्शियण्ट इण्डिया**, सं० ७ (१९५१) ।

१४. बृजवासी लाल—ए नोट ऑन एक्सकेवेशन्स ऐट साईपाई, **आर्कियोलॉजिकल कॉंग्रेस ऐण्ड सेमिनार पेपर्स**, नागपुर, १९७२ ।

१५. रत्नचन्द्र अग्रवाल—एण्टीक्विटी ऑव श्रीवत्स मार्क ऑव विष्णु इन इण्डियन आर्ट, जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसाइटी, खण्ड ६६।

१६. रत्नचन्द्र अग्रवाल—सम विष्णु स्कल्पचर्स इन दि सर्दार म्यूज़ियम, जर्नल ऑव इण्डियन म्यूज़ियम्स, बम्बई, खण्ड ६।

१७. रमेशचन्द्र शर्मा—न्यू इन्स्क्रिप्शन फ्रॉम मथुरा, पुरातत्त्व, सं० ८ (१६७१)।

१८. वी० एस० वाकणकर—प्रीहिस्टॉरिक केव-पेण्टिंग्स, मार्ग, खण्ड २८, सं० ४।

१६. वी० एस० वाकणकर—भीमबेटका-दि प्रीहिस्टॉरिक पैराडाइज़, प्राच्य प्रतिभा, खण्ड ३, सं० २।

२०. वासुदेव शरण अग्रवाल—मथुरा टेराकोटाज़, जर्नल ऑव दि यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी, खण्ड ६।

२१. श्याम कुमार पाण्डेय—इण्डियन रॉक पेण्टिंग्स : स्टडी इन सिम्बलॉजी, मार्ग, खण्ड २८, सं० ४।

२२. शिवराममूर्ति—ज्यॉग्रैफ़िकल ऐण्ड क्रोनोलॉजिकल फ़ैक्टर्स इन इण्डियन आइक्नोग्रैफ़ी, एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ६।

२३. सर मार्टीमर ह्वीलर—ब्रह्मगिरि ऐण्ड चन्द्रवल्ली १६४७ : मेगॉलिथिक ऐण्ड अदर कल्चर्स इन मैसूर स्टेट, एन्शियण्ट इण्डिया, सं० ४।

२४. हँसमुख धीरज सांकलिया फ़ंक्शनल सिगनीफ़िकेन्स ऑव दि ओ० सी० पी० ऐण्ड पी० जी० डब्ल्यू० शेप्स ऐण्ड एसोशिएटेड ऑबजेक्ट्स, पुरातत्त्व, सं० ७ (१६७४)।

(घ) शोध पत्रिकाएँ

१. ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट, १६१२-१३।

२. इण्डियन ऑर्कियोलॉजी : ए रिव्यू—१६५५-५६, १६५७-५८, १६५८-५६, १६६७-६८ तथा १६७१-७२।

३ एन्शियण्ट इण्डिया सं० १, ४, ६, ७, तथा ६।

४ गोपीनाथ कविराज अभिनन्दन ग्रंथ—लखनऊ, १६६७।

५. डॉ० मिराशी अभिनन्दन ग्रंथ नागपुर, १६६५।

६. जर्नल ऑव दि अमेरिकन ओरियण्टल सोसाइटी, खण्ड ४८, सं० ३।

७. जर्नल ऑव दि ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट—खण्ड २१, सं० ४।

८. जर्नल ऑव दि न्यूमिस्मेटिक सोसाइटी ऑव इण्डिया—खण्ड ८, २७, ३६।

६. जर्नल ऑव बिहार रिसर्च सोसाइटी—खण्ड ६६।

१०. जर्नल ऑव इण्डियन सोसाइटी ऑव ओरियण्टल आर्ट- न्यू सीरीज़ खण्ड २।
११. जर्नल ऑव दि यू० पी० हिस्टॉरिकल सोसाइटी—खण्ड १४ तथा २३।
१२. नया प्रतीक (सं० वात्स्यायन)—नई दिल्ली, मई १६७४।
१३. नार्दन इण्डिया पत्रिका—इलाहाबाद, ११ अगस्त १६७६।
१४. प्राच्य प्रतिभा—खण्ड ३, सं० २।
१५. पुरातत्व (बुलेटिन ऑव दि आर्कियोलॉजिकल सोसाइटी ऑव इण्डिया)—खण्ड १ तथा ६।
१६. मार्ग—खण्ड २८, सं० ४।
१७. मेमायर्स ऑव ऑर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑव इण्डिया—सं० ७३, १६५५।
१८. मैन—सं० १५८-६०, सितम्बर १६५५।
१९. यूनेस्को कोरियर—फरवरी १६६३।
२० ललित कला—सं० ७ (१६६०) तथा सं० ८ (१६६१)।
२१. हिन्दुस्तान टाइम्स (बुद्ध जयंती अंक)—नई दिल्ली, २४ मई, १६५६।

विशेष—

कृपया पृष्ठ ४१ पर पाद टिप्पणी सं० ४ एवं ५ का क्रम वदल कर देखें और पृष्ठ १२६ पर बौद्ध साहित्य को क्रम सं० ८ से समझें।

गंगानाथ झा केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ